

Brown Book

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182517

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. 1483/8256 Accession No. G.H.2366

Author सत्य (सत्यनारायण गं. मास)

Title चिन्मय 1 1956

This book should be returned on or before the date
last marked below.

चित्स = चैतन्य + मय = चित्तमय
चेतना से परिपूर्ण

यह है चिन्मय की रूपरेखा !

सांस्कृतिक स्वरूप के भावी उत्थान की शुभ्र कल्पना जिन सचेतन कलाकारों की है —उनमें से एक व्यक्ति इस उपन्यास का नायक है।

वह कला का विद्यार्थी, गहन अध्ययन में उसका अटूट विश्वास ! सौन्दर्य का स्रष्टा ही नहीं, उससे पोषित भी, उसका पोषक भी !

वातावरण की विषम तिक्तता में भी जब वह उद्बोधन प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है, तभी जीवन की प्रतिकूल राह में, अनजानी परिस्थितियों की हर्ष बाधा के बावजूद भी वह हारता नहीं।

प्रस्तुत नायक के जय की गौरवगाथा की प्रशस्ति स्पष्ट रूप से सम्भवतः नहीं गार्थी जा सकी है; लेकिन फिर भी जहाँ कहीं वह तैर कर उभर आया है, उसका एक मात्र कारण उसकी अपनी विशिष्टता है। वह वही है, जिस रूप में प्रस्तुत है, इसलिए यदि वह अत्यन्त साधारण अथवा अत्यन्त असाधारण परिस्थितियों से नहीं गुजर पाया तो उसके लिए वह लज्जित नहीं।

वह अनाथ, रिक्त, जिज्ञासु, सौन्दर्य, स्नेह और चेतना का भूखा। श्रृष्टि है कि साधार, ठोस, परिपूर्ण; अनुभूतियों के विभिन्न रूपों की अभिव्यक्ति, असीम ज्ञान की भण्डार, प्यार और लगाव के नाना प्रकार के रूपों से सुसज्जित !

राम अकेला, अनन्त समुद्र सामने, 'जय हो' ऐसे आशीर्वाद पर उसका अखंड विश्वास !!

सोहेम् प्रकाशन के

-आगामी आकर्षण-

[१] अखिल भारतीय
प्रकाशक
एवं
पुस्तक विक्रेता
निर्देशिका
(डायरेक्ट्री)

[२] अनादृत (उपन्यास)

[३] ठाकरे के कार्टून

[४] पंथ अपरिचित
(कहानी संग्रह)

[५] विराट रूप
(लघुकथाएं: परेबल्स)

[६] अग्निसाक्षी
(उपन्यास)

चि न्म य

-- श्रोसत्य --

[सत्यनारायण गंगादास व्यास]

श्रीहनु प्रकाशन

एफ. १५, एवेन्यू रोड, बेंगलोर सिटी.

—: प्रकाशक :—

श्रीमती श्यामाराणी

“सोहम् प्रकाशन”

एफ. ९५, एवेन्यू रोड,

बेंगलूर सिटी.

शाखा :

धैरेसाविला, ओरलेम,

मलाड, बम्बई.

[मुख्यपृष्ठ के चित्रकार : श्री रामकुमार]

स्वाधिकार सुरक्षित.

प्रथम संस्करण

मई १९५६

मूल्य : तीन रुपये

मुद्रक : दि न्यू प्रेस प्रिन्टरी, १०४, बाजारगेट स्ट्रीट, कोट, बम्बई १.

समर्पण :

**दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे
—भर्तृहरि.**

उस शांत तेज के समक्ष हम प्रणत हैं जो देश
काल की परिधि से परे, असीम तथा
चैतन्य स्वरूप है; और केवल
अनुभव द्वारा जाना
जा सकता
है ।

श्री दाऊदयाल आचार्य को

आमुख :

जो खड़ी थीं भाग्य की ढाल बन कर,
हिल गयीं वे आज दीवारें पुरानी,
नींव के पत्थर कि डगमग हो रहे,
संतोष का मुख, और थिरता का मनोबल
झुक गया है, ढल गया है, क्योंकि अब तो
आत्म-ध्वनि भी बन परायी गूंजती है:-
चाहिए, कुछ चाहिए, मुझको बहुत कुछ चाहिए !

प्रेरणा के सूत उलझे,
केन्द्र बन कर घूमती है, चेतना की शक्ति मेरी ।
कर्म वाणी बन रहा है ।
श्रेष्ठता है ले रही, उद्भावना का रूप सुन्दर ।
ज्ञान मेरी राह है, मंजिल मुनिश्चित ।
पर, आज तो मैं रुक गया हूं,
कांपती गति देखता हूं, कह रहा हूं :
चाहिए, कुछ चाहिए, मुझको बहुत कुछ चाहिए ।

वासना-ऐश्वर्य अथवा कामना किल्लोल
घूमती गति चक्र पर कम सिद्धी बन,
मैं हिमालय की तरह मजबूत था,
आ गया भूचाल मेरी रूढ़ करुणा वह रही है :
रो रही हैं :
चाहिए, कुछ चाहिए, मुझको बहुत कुछ चाहिए !

प्रगति का है पंथ विस्तृत और टेढ़ा,
पार करने की अमर है कामना मेरी,
देखता हूं, दृष्टि के विश्वास से भी दूर
मंजिल के किनारे तुम खड़ी हो रूपसि !
मैं तुम्हारी खोज में था ?

स्पष्टीकरण :

प्रस्तुत उपन्यास में वर्णित पात्र-पात्राओं के नाम बदल दिये गये हैं। फिर भी लेखक को मालूम है, कि उनमें से अधिकांश अभी तक मौजूद हैं, इसलिए उनके हाथ, इस उपन्यास के पढ़ने पर वे अपने आप को खोज निकालेंगे। उन सबके साथ अप्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से नाते-रिश्ते भी हैं। जानता हूँ, कि प्रशंसा अथवा आलोचना को क्षमा करने में वे सब समर्थ हैं। लेकिन, फिर भी क्षमा उनसे मांगना आवश्यक है, जिन्हें भ्रम हो जाय।

* * *

जिन्हें नीला से, अथवा नीला के प्रतिरूप से साक्षात्कार करने का मौका हासिल हो सका है, उन्हें बधाई देने को आज भी लेखक सौभाग्यसूचक ममझता है। इसलिए यदि वे अपना संतोष लेखक तक पहुंचा सकें तो सचमुच बड़ा भारी उपकार करेंगे।

* * *

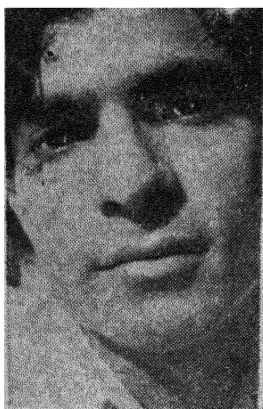
चूँकि नायक द्वारा उपन्यास की कथा नैरेट [पुनर्कथित] की गयी है, इसलिए स्वाभाविक रूप से अन्य पात्रों का वर्णन प्रभाव की अभिव्यक्ति द्वारा ही किया गया है। यह भी अस्पष्ट नहीं रहता कि लेखक का प्रयास संक्षिप्तता की ओर अधिक सचेत है। फिर भी अन्य पात्रों की कालात में लेखक इम्प्रेसन्स को ही मान्यता देता है।

* * *

नैरेशन के कारण ही संवादों की भाषा एक-प्रवाह-सी रही है। इससे अन्य पात्रों की भाषाओं पर अस्वाभाविकता का आरोप नहीं लगाया जा सकता !

* * *

मेरे वुजुर्ग और परम प्रिय, बीकानेर के मित्र श्री दाऊदयाल आचार्य द्वारा इसे न समझ पाने के असमर्थतासूचक पत्र के कारण इसे दुबारा लिखने को बाध्य हुआ हूँ। सो कोशिश की है, कि अपने तई इसमें कहीं हीनता न रहने दूं। लेकिन इसके अतिरिक्त भी खामियां शेष हैं, तो यही कहूंगा, कि इससे अधिक योग्य नहीं हूँ।



परिचय इतना !

अनेक लोगों के विभिन्न मत हैं। 'सत्य अत्यधिक प्रतिभा-सम्पन्न और परिश्रमशील है' ऐसा कहनेवाले लोग भी हैं और ऐसे लोगों की भी कमी नहीं, जिनकी दृष्टि में वह घनघोर आलसी और लापरवाह है। इसे मस्ती और उदारता की संज्ञा देने वाले भी संसार में हैं। कुछ लोगों का कहना है, कि इसकी शैली में रस है—गहराई है। विपरीत मत यह है, कि टाइप-राइटर पर लिखने का धुरन्धर अभ्यासी टाइपिस्ट से अधिक कुछ हो ही नहीं सकता। एक साहब की राय में 'सत्य' के दुस्साहस की सीमा नहीं है। दूसरे का प्रतिवाद है, कि ऐसे आदमी ही एक-न-एक दिन धूमकेतु की तरह चमकते हैं।

अनेकानेक कागज पत्रों, कटिंगों के ढेर और फाइलों के अम्बार में व्यस्त इस पुस्तक के लेखक को इन सबकी असारता समझाने के विपुल प्रयत्न भी हुए हैं। लेकिन साधारणतया यही जवाब मिलता है, कि—सरस्वती की इस विधि से की जानेवाली पूजा की महिमा अपरम्पार है।

उपन्यास, कहानियाँ, पेरबल्स, सामयिक लेख, संवादपत्र, रिपोर्टाज, इण्टरव्यूज, रेडियो नाटक, इत्यादि, इत्यादि पचास तरह के काम एक साथ करने की प्रवृत्ति की निन्दा काफी हो चुकी है। लेकिन लगता है २४ वर्षों की आयु तक किसी एक चीज को पसन्द कर लेना इस लेखक के लिए सम्भव नहीं हो सका है। इसलिए कहनेवालों कहें—उसकी प्रतिभा चतुर्दिक् है।

--विजय

एक :

सिं हावलोकन करता हूँ, तो व्यतीत जीवन की संक्षिप्तता साकार हो उठती है। फिर भी जानता हूँ कि इस अल्पता के प्रति संचित गौरव आज भी अखंडित अक्षुण्ण बना हुआ है।

गत इतिहास की कथा जहां विराम लेती है, वहां जरासा स्पर्श होते ही आज भी पीड़ा होती है।

इस पीड़ा से मुझे प्यार है।

नीला अब इस संसार में नहीं है। उसकी स्मृति मात्र का ही मैं वारिस हूँ। इस थाती का मोल करने एक बार सरे बाजार खड़ा हुआ था, उस दिन कृतित्व की अकिंचनता का जो बोध हुआ था, उससे समस्त संचित शक्ति का आधार ही कांप सा गया। अन्तर्दृष्टि की सिद्धि पर केन्द्रित निष्ठा पिघल गयी। बहिर्मुखी वास्तविकता अनावरण हो गयी। उस दिन जीवन की सम्पूर्ण भूमिका को दांव पर लगाकर हार गया था।

कृतित्व की उस पराजय में मौलिक प्रेरणा की जीत स्वीकार कर ली जाय, तो कृतार्थता अशेष नहीं रहेगी, यही सोचकर, पीछे की ओर मुड़ कर देखता हूँ:

आज से दो वर्ष पूर्व। बम्बई के एक भीड़-भरे बाजार में बहा जा रहा था। भीड़ में चलनेवाला अधिक सावधानी के साथ चलता है; साथ ही उसकी असमर्थता बेबस होती है।

सुबह का समय। सम्भवतः साढ़े दस बजे होंगे। नौकरी-पेशावाले बाबू, आफिसर्स, व्यवसाय करनेवाले सेठ, स्कूल-कालेज जानेवाले विद्यार्थी, भिखमंगे, बेकार और छोटे-मोटे फेरीवालोंसे लदा हुआ फुटपाथ। किनारे पर शृंगार-मंडिता दुकानें, रेस्टोरेंट्स, बैंक्स, आफिसेज। ऊपर नजर उठाते ही विभिन्न प्रकार के रंगों से पुते हुए साइनबोर्डों का अपना वक्तव्य मुखरित हो उठता है।

फुटपाथ के समीप धन, सम्पत्ति, अलंकारों से बोझिल जो दुकानें हैं, वहाँ की व्यस्तता अत्यन्त तीव्रगामी है। अजब भीड़ में बहनेवाला व्यक्ति देखने के लिए रुक नहीं पाता, और उनकी क्रियाशीलता एक क्षण के लिए भी विश्राम नहीं कर पाती।

फुटपाथ के दूसरे किनारे की चौड़ी सड़क पर कारें भागती चली जा रही हैं। दुर्भिक्षिली बसें दौड़ रही हैं। ट्रामों की घर्षाहत एक खास अंदाज के साथ, स्वर के उतार-चढ़ाव के साथ दौड़ती-दौड़ती, अपने स्टोपेज पर रुक जाती हैं। उतरनेवाले फुर्ति से उतरते हैं; चढ़नेवालों में भी स्फूर्ति है। एक मिनट के अल्पांश में ही मुसाफिरों का आदान-प्रदान कर, वह फिर घर्षाकर, अपना स्वर तेज करके भागती हुई चली जाती है।

मैं भीड़ में बहा जा रहा हूँ।

बस की प्रतीक्षा करनेवाली लम्बी लाइन अचल है। जो पीछे खड़े हैं, दो बार-बार मुड़ कर बस के आगमन से अवगत होना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी प्रकार की चंचलता दृष्टिगोचर नहीं होती; और मैं भीड़ के निरन्तर क्रियाशील प्रवाह में आगे बढ़ जाता हूँ।

बहती चली जा रही इस धारा में निजता का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर नहीं मिल पाता। अपने अतिरिक्त चारों ओर एकत्रित जीवन के इन प्रतीकों को मैं सिर ऊँचा करके देखता हूँ। बहाव में बहे जाना, यही जीवनसार सा लगता है। इसके अतिरिक्त शेष कुछ नहीं।

अर्जुन ने कृष्ण से एक बार पूछा था, “प्रभो! विराट रूप देखना चाहता हूँ।” समर्थ कृष्ण तब सम्भवतः उस जिज्ञासु की विस्फारित आंखों के सामने इसी तरह भीड़ बन कर छा गये थे; और अर्जुन ने आंखें मूंद ली थीं। कहा होगा, मेरा अस्तित्व कहां? मैं कहां? मैं अत्यन्त स्वल्प, अल्पतुच्छ! इस भीड़ के घेरे मुझे अपने आपको ढूंढने दो! तब विराट के एकत्रित स्वरूप से अलग नत-नयनों से उसने अपना रूप देखा होगा। वही सत्य था, उसी की जीत हुई थी।

संयोजित इस भीड़ में मैं अपने को ढूंढ रहा हूँ, अपनों को ढूंढ रहा हूँ। घनीभूत प्रवाह तिरोहित नहीं होता, और उखड़े हुए कदमों के साथ अज्ञात दिशा की ओर मैं भी अज्ञान सा बहा चला जा रहा हूँ।

मैंने अपने कदम संभाले। रुक गया। किसी सफेदपोश सज्जन से टकरा गया। उन्होंने फुर्ति से अपनी जेबों पर हाथ फेरा, उसमें पड़े अतुल धन की सुरक्षा से आश्वस्त होकर कुछ नम्रता के साथ, कुछ झुंझलाहट के साथ फुसफुसाए, “एक्सचूज मी, माफ कीजिए।”

बहते चले जा रहे इस तिनके को देखने का पल भर के लिए अवसर मिल गया। आपस में टकरा जाने के गम्भीर अपराध में गलती किसकी थी, ठीक से नहीं कह सकता। लेकिन उनकी विनम्रता के सामने माफी मांगूँ, यह ठीक नहीं लगा। तिनका अपनी स्थिरता से भिन्न होकर बह गया।

बम्बई-स्टेशनरी-मार्ट से डाइंग के लिए कागजों की कुछ शीटें लेकर काफर्ड मार्केट के अपने तत्कालीन घर की ओर जा रहा था। भीड़-भरे इस बाजार में, बहते हुए इस प्रवाह में मन ही शक्ति नहीं हो गया था, कागज की शीटें भी मुड़ गयी थीं। बार-बार याद आता, ‘मैं कलाकार हूँ, आनेवाले जमाने का स्पष्ट-दृष्टा। आज की तपस्या, आज की साधना, कल वरदान सिद्ध होगी।’ यज्ञ की पूर्णाहुति की अंतिम स्वाहा के बारे में बार-बार चिन्तित होकर डर जाता। हर स्थितिमें विराट भीड़ प्रस्तुत हो जाती, और उसमें अपने को खोज निकालना मुझे असंभव सा लगता। इसलिए चारों ओर आँखें पसार कर अपने किसी साथी को हँड पाने के लिए असीम व्याकुलता महसूस करता।

भीड़ के रेल में पांव उखड़ गये, और मैं फिर आगे बढ़ गया हूँ। किसी फिल्म-कम्पनी का आफिस है। बाहर बहुत से फोटो लगे हुए हैं। नदी के द्वीपों की तरह भीड़ उस ओर सरक गयी है, इसलिए कुछ जगह बन गयी है। अपने अस्तित्व का क्षणिक बोध हुआ, और मैं तेजी के साथ अपना रास्ता बनाने लगा।

फिर किसी से टकरा गया।

सामने एक सुन्दरी है, उसने बुरा नहीं माना। झुक कर, तिरछी नजर से देखकर मुसकरा दिया।

उस मुसकराहट की क्षमा अत्यधिक उदार थी; जिसमें मेरे जैसा निरीह प्राणी तिरस्कार का भी पात्र नहीं हो सकता।

अपने को खोज कर सोचता हूँ, कोई कुछ कहता, भला अथवा बुरा; तो अच्छा होता। सम्बोधन से निजता का बोध मार्मिक होता। तब फिर नजर

तैर कर चारों और फैल जाती—कि कौन है अपना, जो सम्बोधन का मर्म जानता हो, इस जिवन की ललक को सार्थक कर सकता हो ?

सुना है, आन्तरिक मन की घनिष्ठ कल्पना कभी-कभी साकार स्वरूप भी धारण कर लेती है। लेकिन ऐसा यहां, इस समय, प्रस्तुत अवस्था में भी हो सकता है, विश्वास नहीं होता !

तो इस भीड़ में परिचित और स्वजन कोई नहीं है ? फिर निजता का बोध किस काम का ? भीड़ में बड़े जाना अधिक कुरेदेगा नहीं ?

लेकिन समर्पण से पहले की एक अगाध अतृप्त आकांक्षा है कि कोई अपना मिले, कोई अजानुभुजाओं से ऊपर उठाकर मेरे पिघलते चले जा रहे व्यक्तित्व की रक्षा करे, ताकि इस बहते चले जा रहे जनरव से ऊपर उठ सकूँ। असहाय एकान्त के अभिशाप से दुखी होकर ऐसा विचार करूँ, ऐसी कल्पना करूँ, तो इस क्षण को कोई अप्रलोभनीय न कहे।

किसी को अपना कह कर खोज नहीं पाता, तो यह मेरी दीनता है, लाचारी है, असमर्थता है। लेकिन क्या ऐसा भी कोई नहीं है जो इस भीड़ में से मुझे पुकारे, 'राम ! यहां आओ, मैं यहां हूँ।' जैसे एकान्तवासी राम को जनरव अपने आप घेर लेता था। वे कितनों को जानते थे ? लेकिन उनके लिए आंसू बहानेवालों की संख्या क्या आज तक गणित में समा सकी है ?

राम का पराक्रम था कि दु-लोकों का अन्तर, प्रेम की परिधियों में समा जाता था। मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है।

जो अपने आप में सम्पन्न नहीं, जो स्वयं रिक्त है, वह प्राप्त करने योग्य नहीं बल्कि वह तो प्राप्य को संजाने की सामर्थ्य के प्रति भी शंकायुक्त है।

उस दिन सोच रहा था, जिन्दगी के १८ वर्षों तक हाथ पसारे ही चलता रहा। कुछ पा सका, यह नहीं कह सकता। यदि कुछ पाना होता, तो अब तक बहुत कुछ पा लेता।

—और पा सकता तो आज जो यह तुच्छता, रिक्तता और हीनता महसूस कर रहा हूँ, इस पाप से मुक्त होता।

—और मुक्त होता मैं भावुक-चित्रकार का हृदय ! खुले रूप से सौन्दर्य को देख सकता, आंक सकता। दे सकता, तो प्रतिदान में बहुत कुछ पा भी सकता।

—सौन्दर्य में अपने व्यक्तित्व को निखार सकता, तो इस विराट जनरव के ऊपर स्थिर रह कर प्रस्तुत भयंकर एकाकी प्रवंचना से मुक्त हो जाता।

—जीवन की सार्थकता की किसी कल्पना पर विश्वास का स्थिर महल संजोया जा सकता। भूत, वर्तमान, और भविष्य के इतिहास के किसी अध्याय पर अंगुलि रख कर उस पर गौरव कर सकता, तो इस भीड़ में भी अकेला नहीं रहता। अकेला होता भी, तो तुच्छ नहीं होता।

लेकिन अतीत कुछ भी नहीं। वर्तमान प्रस्तुत है, जहां भविष्य की आशाएं तिरोहित हो गयी हैं।

उस दिन भी ठीक आज की ही तरह पीछे मुड़ कर गत-जीवन का मूल्यांकन और आधार ढूंढने में प्रयत्नशील था।

स्मृति के केन्द्रस्थल से जो चित्र उभरता है, वह एक बालक का है। अनाथ अराक्षित, दया का पात्र। अनाथालय के अध्यापकों का आज्ञानुवर्ती। भीड़ में बहता चला जा रहा तिनका। एक दिन रुका तो मालूम हुआ कि मेट्रिक पास कर गया हूं। युवक हो गया हूं। अपने बारेमें अब स्वयं जिम्मेदार हूं। अपने पैरों पर खड़े होकर, खुद की आंखों से, बिना किसी चदमें के संसार देखने की महंगी आजादी मुझे मिल गयी है। लेकिन इस आजादी में असहायता का एक ही रंग अधिकाधिक गहरा होकर काला होता चला जा रहा है।

जैसे ऊपर से कोई और रंग पोत दिया गया हो, परिवर्तन मौलिक स्वरूप को प्रभावित नहीं कर सका हो, स्कूल आफ आर्ट्स में भर्ती हुआ। 'अनाथालय से आ रहा हूं,' यह बताने पर, तथा उनके इम्तिहान में पास हो जाने के कारण, स्कूल में भर्ती कर लिया गया। जैसे किसी भदे चित्र को सुनहले फ्रेम में टांग दिया गया हो।

चित्र चाहे जैसा रहा हो, फ्रेम की कीमत भी तो होती है।

जे. पी. सरकार ने लाइब्रेरी की पुस्तकों की जिल्दसाजी करने का काम भेरे सुपुर्द कर दिया। मैंने कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार किया। दो वर्षों से वहां यह काम करता रहा हूं। लेकिन कभी किसी ने किसी तरह की शिकायत नहीं की। सरकार साहब कहते थे 'राम बड़ा मेहनती है।' मैं नम्रता से झुक सा जाता। सोचता, इसके अतिरिक्त यह राम क्या हो सकता है? जवाब नहीं मिलता, और मैं खामोश हो जाता।

उस दिन बाहर बैठा मूर्तियों के स्केवेज बना रहा था । तभी सरकार साहब आ गये । पूछा, क्लास में नहीं गये ?

-आज तो स्पेशल-क्लासेज हैं !

-तो तुम अटेण्ड नहीं करोगे ?

जवाब नहीं दिया । सरकार साहब समझ गये, स्पेशल-क्लासेज की ६ आने फीस है । यह भी किसी के लिए दुर्लभ हो सकती है, एकाएक यह तथ्य उनकी समझ में आया । कहा, आओ मेरे साथ ।

मैंने कापी संभाली । पेंसिल जेब में रखी । उनके पीछे-पीछे चलने लगा ।

बड़े हाल में रोशनी काफी थी । इसलिए पर्दे लगाने पर भी अन्धकार नहीं था । सरकार साहब के साथ अन्दर चला गया । पर्दे के पास ही एक महिला खड़ी थी । सरकार साहब को उसने नमस्कार किया । मैंने विनीत नजरों से उसे देखा ।

रेशमी साड़ी में उसकी दुबली पतली काया सारे वातावरण से भिन्न सी लगी । रंग उसका गोरा था । चेहरे पर प्रसन्नता की मुसकराहट । धनुषाकार भौंहें । पतले रक्तिम होठ । ललाट पर छोटी सी काली बिन्दी । जूड़े में लगा हुआ बड़ा सा गुलाब का फूल मुरझाकर एक ओर झुक सा गया था । शायद उसकी समस्त कांति और सौन्दर्य के सामने परास्त हो गया हो । अभिवादन के लिए सम्मिलित हाथों में पतली चूड़ियां कांप रहीं थीं । एक हाथ में बंधी हुई छोटी सी घड़ी, नीचे की ओर लटक गयी थी ।

सरकार साहब ने पूछा, डेमोंस्ट्रेटर नहीं आए ?

उसने एकबारगी हाल की ओर नजर घुमायी । सारे विशार्थी अपनी डेस्कों पर झुके हुए बोर्डों को संभाले शांत बैठे, उस महिला की खोजती हुई नजरों का समर्थन कर रहे थे । उसने जवाब दिया, अभी तक तो नहीं आए ।

सरकार साहब ने अंग्रेजी में कहा, यह त्रियाथी भी यहीं बैठेगा । डेमों-स्ट्रेटर से कह देना, मैंने भेजा है ।

प्रत्युत्तर में उसने सिर हिलाया । अर्थ था, ठीक है ।

सरकार साहब चले गए ।

मैं दरिद्र हूं । ६ आने खर्च करने में भी असमर्थ, यह तथ्य मानो साकार होकर उसे छू गया । देखा, उपस्थित छात्र भी अप्रभावित नहीं हैं ।

मैं उस अनिष्ट सुन्दरी को देखता ही रह गया।

सरकार साहब की विशेष कृपा को उस मोडेल की सहज स्वीकृति जैसे मिल गयी हो। रंगीन परोवाली तितली की तरह मुसकराहट उसके चेहरे पर; पर फैला कर उड़ गयी। मैं सम्मोहित सा, ठगा हुआ सा, वहीं खड़ा रह गया। तब उसने कहा, गो एण्ड सिट।

मुझे असमर्थता, अज्ञानता का भान हुआ। कापी पेंसिल संभालकर, एक खाली सीट पर, सबसे पीछे बैठ गया।

देखता रहा, उस मोडेल की ओर, जो मेरी ओर नहीं देख रही थी।

डेमोंस्ट्रेटर महोदय आ गए। प्रविष्ट विद्यार्थियों के पास से उन्होंने प्रवेश टिकट ले लिए। मेरे पास भी आए, तभी उसने आकर, जैसे अचानक याद आ गया हो, कहा, सरकार साहब आए थे। उन्होंने इनके बारे में कहा है कि इन्हें बैठने दिया जाय।

डेमोंस्ट्रेटर ने मुझसे कुछ भी नहीं पूछा। वे दोनों साथ ही साथ सामने सजाए हुए तख्ते पर चले गये। डेमोंस्ट्रेटर महोदय तख्ते से नीचे उतर आये। सामने बैठे विद्यार्थियों को प्रारम्भिक निर्देशन देने लगे।

वह महिला तख्ते पर खड़ी हो गयी। लगा कि जैसे वह सारी क्लास को तौलने का प्रयत्न कर रही हो। एक ही क्षण के पश्चात रेशमी साड़ी नीचे सरकने लगी। वस्त्र पास ही एकत्रित हो गये। उसका गोरा शरीर अनावरण हो गया।

नम्र !

मैं ऊपर से नीचे तक त्रिहर सा गया।

पहली बार ज्ञानोदय हुआ—यह स्त्री है।

मैं एकटक उसकी ओर देखता रहा। डेमोंस्ट्रेटर कड़ी निगाहों से सावधान हुआ तो स्केच बनाने में तल्लीन हो गया। सारी जड़ भावनाएं पेंसिल से खींची जानेवाली रेखाओं में जड़ ही बनी रहीं। जिस सीमा तक जान गया था। सोच गया था, उसके अतिरिक्त अधिक नहीं जाना जा सकता। नहीं जानना चाहिए, यह समझ गया।

लेकिन फिर भी डेमोंस्ट्रेटर की आवाज का अनुसरण करती हुई मेरी निगाहें जब भी उस जीवित मोडेल की तरफ झुक जातीं, तो लगता कि दृष्टि की स्थिरता में परिवर्तन असंभव है। लेकिन पलक गिरते, और मैं झुक जाता। कापी में पेंसिल दौड़ने लगती। एकाग्र चित्त से पेंसिल की सर्राहट सुनता।

बाद में मालूम हुआ, उसका नाम नीला है।

हाल से बाहर दो एक बार मुझे मिली थी। मैंने चकित भ्रमित से नमस्कार किए। प्रत्युत्तर में वह मुसकराई। कुछ क्षणों के पश्चात सब कुछ विलीन हो गया।

लेकिन शृण्व सी स्मृति, अनुपस्थिति में उपस्थिति हो जाती। इस शृण्व की कोई भूमिका नहीं थी, इसके अतिरिक्त कि एक स्त्री, एक अनावरण नारी के सम्मुख में मुग्ध नेत्रों से देख रहा हूँ।

कल्पना करता, कि एक दिन एक ओइल-पेंटिंग बनाऊंगा। बहुत बड़ी-बहुत बड़ी; इतनी बड़ी, जितनी कि सारी स्कूल है। फिर उसे चुपचाप देखा कहूंगा।

भीड़ में बहा जा रहा हूँ। अतीत की संक्षिप्त कथा में वर्तमान जाने कब और कैसे हावी हो गया।

तभी ऊपर के तल्ले की किसी सद्-गृहिणी ने तुलसी में जल सींचा, और उसकी कुछ बूंदें फिसलती हुई, मेरे ललाट को छूती हुई गालों तक सरक आई।

कितने साफ सुथरे, टिप-टोप विद्यार्थी स्कूल में आते हैं। उनकी सफेदी और उज्ज्वलता में दब सा जाता हूँ। आगे की बैंच पर बैठने का साहस नहीं होता। जानता हूँ कि पिछली सीट पर बैठने पर मल्ला साहब की पतली आवाज सुनाई नहीं देती और सामने का मोडेल कुछ छोटा दिखाई देता है। लेकिन उन श्वेत-बगुलों के बीच काग की तरह बैठते लज्जा सी महसूस होती है।

इसलिए इस महापात्रा के प्रति अपरिभित जिज्ञासा होते हुए भी मैं उसे कभी नजदीक से नहीं देख सका।

रास्ता पार करने के लिए सड़क पर जो रेखाएँ पसरी हुई हैं, उनमें से होकर गुजर रहा था, कि किसी का हाथ आगे बढ़ आया, मजबूती से पकड़ कर मुझे

पीछे की ओर ढकेल ले गया। नजर उठाकर सामने देखा, विशालकाय बस का ब्रेक चीत्कार भर रहा था। ड्राइवर ने कांच में से मुंह निकाल कर मेरी अपावधानी का निन्दा की। उसे नहीं सुन सका। मुड़कर, अपने रक्षक की ओर देखा, नीला था। उसने हाथ छोड़ दिया।

कांप सा गया। जैसे अर्जुन के सामने का विराट रूप अस्त हो गया हो और उसका सखा मात्र सामने उपस्थित हो। ऐसी कल्पना करते हुए, कुछ इस तरह जड़-सा हो गया कि उसे नमस्कार तक नहीं कर सका। उसी ने हंस कर कहा, इस तरह से आंख मूंदकर चलोगे, तो आर्टिस्ट ही नहीं, फिलोसफर भी बन जाओगे। अचरज नहीं, यदि जल्दी ही निर्वाण प्राप्त हो जाय।

यह भाषा किसी मॉडेल की नहीं हो सकती। अपनी अल्पता का ऐसा ज्वर सा आया, कि जी किया कि जमीन फट जाय, और उसमें समा जाऊं। जिसका चित्र कल्पना में निहारता रहा, वह मेरी हैसियत से बाहर की चीज है, यह जानकर कण-सा हो आया।

साधारण शिष्टाचार के नाते 'धन्यवाद' तक नहीं कह सका।

कारों की कतार समाप्त हुई। हम दोनों ने साथ ही रास्ता पार किया।

उसने पूछा, स्कूल जा रहे हो ?

-नहीं।

-आज स्कूल बंद है ?

-हां।

-घर किस तरफ है ?

-क्राफर्ड मार्केट के पास।

-क्राफर्ड मार्केट के पास ! कहां ?

-नूर बिल्डिंग में। तीसरे तल्ले।

-पिताजी क्या करते हैं ?

हंसी आ गयी पर माधुर्यता बिहीन। कहा, मां-बाप कोई नहीं। पेइंग-गेस्ट हूं। एक सज्जन हैं, सस्ते में, दया करके उन्होंने रख लिया है।

वह चुप हो गयी। साथ साथ चलते रहे।

फिर अविराम शांति। पूछा, चाय पीयोगे ?

कहा, नहीं।

प्रथम निर्मंत्रण अस्वीकृत करना सहज नहीं। प्रयत्न करके ऐसा किया हो, सो बात भी नहीं। अचानक यही मुंह से निकल गया।

डरते-डरते मैंने उसकी ओर देखा। प्रस्तुत खामोशी से भयभीत, चाहता था कि उसके मौन से भी कुछ अर्थ निकाल सकूँ। लेकिन वह निर्विकार थी। चेहरे पर वही प्रसन्नता, वही सौन्दर्य, वही मर्यादा, वही गांभीर्य। उसने अपने हाथ का बोझ दूसरे हाथ में बदल लिया। मैंने विनती की, लाइए मुझे दे दीजिए, पहुँचा दूँ।

सामान दे दिया।

फिर खामोशी, साथ साथ चलने लगा।

पूछा:—घर तक पहुँचा दोगे ?

कहा:—पहुँचा दूँगा।

—घर जाने में देर तो नहीं होगी ?

—नहीं।

सामान अधिक नहीं था। चाहती तो वह खरब उठा सकती थी। बल्कि ले ही जा रही थी। शायद कुछ दिक्कत होती। मैं साथ हूँ, दिक्कत को कम कर सकता हूँ। कहूँगा।

एक हाथ में ड्राइंग का सामान संभाले, और दूसरे हाथ में कपड़ों का बंडल थामे चुपचाप चला जा रहा हूँ। बोरीबंदर पर ई. रुट के बस-स्टेण्ड पर खड़े होने का उसने संकेत किया। यंत्र-संचालित सा मैं उसके पास जाकर 'क्यू' में खड़ा हो गया।

अपमान जिन्दगी में बहुत हुआ है। आदी हो गया हूँ, इसलिए अधिक अखरता नहीं। कितना होना शेष है, इसका हिसाब मेरे पास नहीं। लेकिन अपमान की इस कल्पना से मैं बुरी तरह संकुचित सा हो उठा, जब कि बस में बैठने पर इस मोडेल, इस नीला द्वारा मेरा टिकट खरीदा जायगा। उस समय मैं चुपचाप नजर नीची किये बैठा रहूँगा। शायद एक असह्य दृष्टि से यह नीला मेरी ओर देखेगी। मैं बर्दाश्त कर लूँगा।

लेकिन इससे भी कुछ अधिक हो सकता है। बस का कंडेक्टर मेरे पास ही आकर खड़ा हो सकता है। टिकट में छेद करने वाली मशीन की स्प्रिंग को अपनी आदत के अनुसार बजाते हुए, पैसों के लिये उसने हाथ फैलाया।

मेरी नजर, बस में बैठे सारे यात्रियों को देख गयी। टिकट के पैसे देने में उपस्थित सारे व्यक्ति समर्थ थे। एक मैं ही था, जिसकी आंखें झुक गयीं। नीला ने पर्स खोल कर कण्डक्टर को पैसे दे दिये, दो टिकट लिये।

बस-ड्राइवर गीयर पर गीयर बदल रहा है। बस तेजी के साथ भागी जा रही है। खिड़की के पास बैठे लोग बाहर की ओर देख रहे हैं। उनकी नजरों में फैला हुआ, भागता हुआ, सौन्दर्य तैर रहा है। लेकिन मेरी नजर में बस का फर्श है, जहाँ पतली लकड़ी की पटरियाँ समानान्तर पर स्थिर हैं। पटरियों के बीच में फँसा हुआ गर्द स्पष्ट है। फालतू के टिकट बस के धक्कों के सहारे इधर उधर लुढ़क रहे हैं। शायद छ-सात स्टोपेज आए। इससे भी अधिक आए होंगे। बहुत से सह-यात्री उतरे। कई आये। मलाबार-हिल के नीचे और चौपाटी से कुछ दूर, जहाँ एक पीले रंग के मकान के सामने बस खड़ी होती है, वहीं मैं नीला के साथ उतर गया। अपने साथ आने का संकेत करके, मेरे अनुगमन पर अतुलनीय विश्वास करते हुए वह आगे बढ़ गयी। रास्ता क्रॉस करके, उसके साथ-साथ सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। कुछ चौकन्ना सा, कुछ घबराया हुआ-सा, उस एकान्त-स्त्री के अधिकृत आदेशों का पालन करता रहा।

पहले तल्ले पर उसने अपने रूम का दरवाजा खोला। कमरा अधिक लम्बा चौड़ा नहीं था, लेकिन ऊँचाई काफी से अधिक थी। एक ओर साफ-सुथरा पलंग बिछा हुआ था। पलंग के समीप छोटी-सी एक टेबल पर कुछ पुस्तकें पड़ी थीं। टेबल के पास ही की तिछीं आलमारी पर एलार्म टिक-टिक कर रही थी। मैं खामोश था, वह मौन। बाहर दोपहर की तेज हवा बह रही थी। घनिष्ठ वातावरण में घड़ी की आवाज दोनों के मौन के बावजूद भी आश्वासन बनी हुई थी।

एक कोने में स्टोव चमक रहा था। उसके पास ही रैक में करानि से सजी हुई कुछ शीशियाँ और लिफ्टन चाय के डिब्बे थे; सम्भवतः यह रसोई का सामान था। सारा कमरा साफ सुथरा, और सजा हुआ। जैसे कुल मिला कर कह रहा हो, 'यह सब एक स्त्री का है; यह सब नीला का है।' जइ-कमरा उसके

व्यक्तित्व की मुखरित अभिव्यक्ति बन गया था। एक क्षण के लिए अनजाने संकोच और लज्जा से पराभूत हो गया। उसने पलंग पर सारा सामान रख दिया। दरवाजे के पास पड़ी कुर्सी को खींचकर, बैठने के लिए कहा। एक स्त्री के साथ इस तरह एकान्त में बैठना अजीब सी स्थिति बन गयी। सोचा, क्या यह नीला भी मेरी ही तरह अनाथा है? होगी। हो, तो बुरा नहीं है क्योंकि वह स्त्री है, इसलिए शरण की मांग से झुकती नहीं, गर्वित होकर स्वीकार कर लेती है। दया उसके लिए बोझ नहीं, स्वाभाविक आवश्यकता है। लेकिन मैं विपरीत हूँ।

लगा कि जैसे सिंहल की राजकुमारी के सामने मक्खी बना हुआ राजकुमार लाचार, मजबूर उसके अज्ञात आदेशानुसार, अपनी सीमित शक्तियों के साथ चिन्ता और फिक्र में भिन्ना रहा है। सोचा, मैं किस अकल्याण के भय से डर गया? कौनसा अपमान, कौनसी पीड़ा, और कौनसी लाचारी मैंने नहीं सही है? अब तो अपनी इस सहन-शक्ति के प्रति विश्वास हो जाना चाहिए था।

उसने धीरे से कहा, बैठो।

बैठ गया।

उसने हाथ धोये। पूछा, चाय पीयोगे?

कहा, पी लूंगा।

चाय बनाने के लिए उसने स्टोव जला दिया। पानी रख कर, मेरे सामने आकर बैठ गयी। मैं उसकी प्रत्येक क्रिया को एकाग्र दृष्टि से देख रहा था। लेकिन, अब वह मेरी ओर ध्यान से देख रही है,—यह जानकर लाल हो आया। नजर नीची कर ली। शायद लड़कियों की तरह पांव के अंगूठे से धरती कुरेदता रहा।

उसने पूछा, कविता में तुम्हारी रुचि है?

किसमें रुचि है, यह ठीक से नहीं जानता। विचलित सा हुआ। कहा, है!

—सुनो, एक कविता सुनाती हूँ।

मैं भावमुग्ध श्रोता की तरह मौन, उसके चेहरे पर टकटकी लगाये सुनता रहा। अंग्रेजी पर मेरा अधिकार नहीं। लेकिन भाव की बात थी, ऐसे भाव की, जो मेरे अन्तराल में, निन्द्रित अवस्था में विकास कर रहा था। कविता पूरी तरह से आज याद नहीं है। न वह काफी ही मिल सकी है। लेकिन उसमें जो कुछ कहा गया था, उसे कभी नहीं भूल सकूंगा।

एक लड़के की भावानुभूतियाँ थीं, जो अनाथ है। जिसके माता-पिता अज्ञात हैं। बड़ा होने पर जान जाता है, कि वह किसी युगल की तिरस्कृत संतान है.....और उसकी दृष्टि में तमाम चरित्र-हीन स्त्रियाँ उपस्थित हो जाती हैं, जिनमें वह अपनी माँ की खोज के लिए व्याकुल हो उठता है। दिन रात वेश्याओं के बारे में सोचता हुआ, चरित्र-हीनों के विषय में चिन्तन करता हुआ, वह अपने पर संदेह करने लगता है कि क्या वह कभी अपनी इस खोज से मुक्त नहीं हो सकेगा ?

कविता में वही सब कुछ था, जो मेरे मन की अतल गहराइयों में सोया हुआ था। वह जाग गया तो उसकी फुत्कार से मैं बुझ-सा गया। सचमुच जिम माँ के प्यार के बारे में अनन्त प्रशस्तियाँ गायी गयी हैं, वह मेरे लिए इस संसार में अलभ्य है। विश्वास पूर्वक इस अभाग्य की बात भी नहीं कह सकता, कि वह जिन्दा है या नहीं। लेकिन कल्पना करता हूँ कि वह जिन्दा है, और यहीं कहीं खो गयी है। ढूँढने की चिर-पिपासु वृत्ति कष्ट होकर बहने लगी। रोने लगा। अपनी कविता का प्रभाव वह देख रही थी। कहा, कल जिस पर कविता लिखी वह आज मिल गया। यह कैसा विधान है प्रभु का ?

पानी उबलने लगा था। वह उठकर चाय की पत्तियाँ डालने के लिए स्टोव के पास चली गयी।

देख रहा था, गर्म पानी से भाप उड़ रही है। सोचता रहा, 'यही तो नहीं, यही तो नहीं ?'

-इसके अतिरिक्त अनाथ व्यक्तियों का कोई और इतिहास नहीं होता ?

-इस कलुष मनोभूमि के अलावा क्या मेरा कोई भविष्य ही नहीं ?

-यह नीला ! मैंने उसकी ओर देखा, स्टोव में हवा भरते हुए उसके जूड़े की वेणी हिल रही थी, यह उसकी अपनी आत्म-कथा है, या हृदय का वास्तविक चित्र ? अथवा मुझे अपमानित करने के लिए उसने संचित कविता-संग्रह में से यही कविता पढ़कर मुझे कुरेद डाला ?

पानी उबल रहा था। भाप घनी बन रही थी।

मन का विधाद अधिक कलुष हो गया।

लगा, कि एकाएक भावनाओं का जो उद्रेक एकात्रित हो गया है, उससे मेरा माथा फट जाएगा ! मैंने कुर्सी की पीठ पर माथा टेक दिया । छत पर नजर गयी । कुर्सी की पीठ से कुछ ही ऊपर पंखे और बिजली का स्विच था । जीवन की तुच्छता, निरर्थकता और लांछना की ग्लानि के मारे हृदय फटा जा रहा था ।

कहीं पड़ा था, बिजली के स्लो-करेंट को धीरे-धीरे छूने पर भावोत्तेजना शांत हो जाती है । भावावेश और सुन्नता न होती, तो मैं अचेतन-सा कुर्सी से उठ न गया होता, और लग्न में उंगलियां न डाल दी होतीं । एक तेजी का झटका-सा लगा । अंगुली के अप्रभाग से माथे तक तीव्र सरसराहट-सी फैल गयी । चाहता था, अपने समस्त अतीत को भूलकर, एक क्षण पूर्व के व्यतीत को भुलाकर प्रस्तुत नीला के इस सहवास का सुख उठा सकूं । इसीलिए प्राणों की बाजी लगाकर भी बिजली के उस स्लो-करेंट से स्वस्थता चाहता था । लगा कि जैसे पिछली बातें माथे से विलीन हो रही हैं । दुबारा अंगुलि डाली...

नीला ने देखा । दौड़ती हुई आई । मुझे खींचते हुए बोली, यह क्या कर रहे हो ?

उस स्पर्श में बिजली के करेंट से भी अधिक तीव्रता थी । मैंने हाथ छुड़ा लिया । पता नहीं कैसे, कह गया, अब स्वस्थ हूं ।

--इस तरह से अपनी हत्या करोगे ?

--तुम्हारे सामने ऐसा अपराध नहीं कहेगा । यह नहीं करता, तो मेरा दिमाग फट गया होता, नीला ।

यही प्रथम सम्बोधन स्थिर हो गया ।

शायद उसे कविता के प्रस्तुत प्रभाव को देखकर विरक्ति ही हुई ।

मेरे कंधे पर हाथ रखकर, आग्रह के साथ उसने मुझे पलंग पर बैठा दिया । मैं दोनों हाथ पीछे की ओर टेक कर बैठ गया । माथे में अभी तक शून्यता साय-साय कर रही थी । मेरे दोनों कंधों पर अपने सीधे हाथ रखकर वह मुझे गौर से देखती रही ।

एकाएक कुछ संकुचित और लज्जित सी हो, चाय की याद कर, उसने मुझे छोड़ दिया । प्यालियों में चाय भर कर ले आयी । एक कप मेरे हाथ में थमा दिया । आदेश मिला, पियो ।

कहने लगी:-आत्महत्या अच्छी चीज नहीं। सारे कलाकार बिना कुछ कहे, बिना अभिव्यक्ति के, इस तरह से आत्म-हनन करने लगें तो कला का क्या होगा, बताओ तो ?

-लेकिन यह राम तो कलाकार नहीं। कला का क्या होगा, इस प्रश्न का उत्तर देने की सामर्थ्य का अभाव ही है। कब कला-दक्ष हो सकूंगा, कौन कह सकता है ? बन भी गया तो महत्व की कौनसी बात होगी ? स्कूल में पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या भी कम नहीं। वे कला-अर्चना कर लें, उनकी सीमांसा, विवेचना करके इस प्रश्न का उत्तर दे सकें, तो मुझे असंतोष नहीं रहेगा।

-जो करना चाहिए, उसे करने के लिए, कह सकते हो, कितने विद्यार्थियों ने तपस्या की होगी ? कलाकार के लिए अपना निजी व्यक्तित्व पहली शर्त है राम ! तभी वह केन्द्रित भावनाओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ हो सकेगा; तभी उसकी भावनाओं की उर्ध्वमुखी परम्परा नूतन और प्रभावशाली चमत्कार प्रदान कर सकेगी।

-विश्वास नहीं होता, कि कुछ कर सकूंगा।

-जिनकी आत्मा इतनी विदग्ध है, जिन्होंने कुछ पाया ही नहीं, वे अपनी अतृप्त आकांक्षाओं से जिन अमर वस्तुओं की कल्पना करेंगे, आएगा एक दिन, कि लोगों को वे सहज ही प्राप्त होंगी। तब कल्पना करो राम, तुम्हारा आशीर्वाद कितना अमोल हो जायगा ? मैं पूछती हूँ, आज तक तुमने जो कुछ सहा है, वह क्या सिर्फ इसलिए कि एक दिन चरम-सीमा पर विराम के आ जाने पर तुम्हारी प्रगति खत्म हो जाएगी ? ऐसा होता है, लेकिन तुम्हारे साथ नहीं होगा, यह गलत नहीं कह रही हूँ, जानती हूँ।

मेरी विवेचना के बारे में उसके विश्वास को आज याद करता हूँ, तो सोचता हूँ, वह आज मौजूद होती तो विश्वास के प्रत्यक्ष पहलू को देखकर कितनी सुखी होती ? लेकिन नाना प्रकार के कष्ट देकर, आज इस गरीब के पास, अभाय की इस एक कण कहानी के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रह गया है।

कहा, भविष्य की सुनहली कल्पना से क्या होगा ? वास्तविकता जो है। उसके सामने विनीत होना यथार्थ है। उससे हार जाना भी वास्तविक है। आदर्शों के लिए जो मनस्वी होते हैं, उनमें हो जाऊँ, यह बात दूसरी है, लेकिन संभावनाएं नहीं हैं, यह बात सही है।

एक क्षण के लिए वह चुप हो गयी।

हाथ में पड़ी चाय ठंडी हो रही थी। अन्तराल में पीकर, खाली प्यालो को पलंग के नीचे रख दिया।

शायद वह जवाब ढूँढ़ रही थी। कहने लगी, “जो कुछ मौजूद है, राम, वही क्रम-हीन सत्य है, यह मानने को जी नहीं चाहता। सत्य के अन्य पहलू यदि प्रस्तुत न हों, तो यह भी मत कहो कि अतिरिक्त स्थिति है ही नहीं। है! दोनों का तटस्थ भाव से जो विश्लेषण कर सकते हैं, वे ही जीतते हैं। हार भी जायं, तो उनका पराक्रम महत्वहीन नहीं माना जाएगा।

‘स्कूल में इस काया को अर्ध-नग्न देखकर सामने बैठे विद्यार्थी रेखा-चित्र बनाते हैं। तर्क है, कला सचेष्ट प्राण ऐसे होती है। होती होगी। पर मेरे लिए तो प्रश्न बना ही रहता है, कि क्या उन सबकी दृष्टि निर्विकार, क्लान्मुखी ही है? ऐसा नहीं है, यह भी जानती हूँ। फिर भी सहती हूँ। इसीलिए सह जाती हूँ, कि इसे तो सहना ही होगा। इस तरह से नहीं सहूंगी, तो दूसरी तरह सहना होगा। सहना तो होगा ही। इस सहने का एक रूप मजबूरी ही नहीं है, दूसरा भी है; जहाँ यह मजबूरी चिन्मय हो उठती है। उनकी संचित भावनाओं की सूक्ष्म अभिव्यक्ति का अध्ययन क्या अकारथ होता है? नहीं होता, इसीलिए मैं विरक्त नहीं हूँ। दुख तो सबको सालता है राम, लेकिन यदि कोई अपने आप को अकेला महसूस करने लगे, तो दुर्भाग्य अधिक काला हो जाता है।’

‘लेकिन’ उसने लम्बी सांस लेकर कहा ‘राम, जिनका दुख बहुत काला हो गया है, वे ही अधिक सुलग भी सकते हैं—अधिक लाल हो सकते हैं।’

नीला के इस वक्तव्य के बावजूद भी उसके अंधकार-पक्ष पर मेरा मन और मस्तिष्क टिक नहीं पाता। सिर्फ यही ख्याल रहता कि यह है नीला, जिसका अनजाना, अनदेखा प्यार वक होकर मेरे करीब आता जा रहा है। बल्कि उसके इस भव्य रूप के सामने अपनी अकिंचनता से दुखी-सा हो उठा। विनम्रता के साथ निवेदन किया, ‘एकान्त और अकेलापन मुझे प्रिय नहीं है। लेकिन क्या करूं, एक से दो हो ही नहीं पाता! दृष्टि की सार्थकता की जो बात कह रही हो, वह मेरे लिए आकाश-कुसुम ही समझो।’

—नहीं राम। तुम अकेले नहीं। तुम जैसी मैं हूँ। मेरे जैसे तुम हो। हम जैसे अनेकों हैं। मुझसे मिल कर उन अनेकों की कल्पना कर लो, बाद में

अंधकार-पक्ष इतना प्रबल नहीं रहेगा । तुमसे बड़ी हूं, इसलिए आन्तरिक आशीर्वाद देती हूं कि तुम एक दिन प्रतिभा-पुत्र बनो, एक दिन सही मायने में कलाकार सिद्ध हो सको । जब ऐसे हो जाओगे, तो मैं इतने में ही राजी हो लूंगी कि एक दिन मैंने तुम्हें यही कहा था ।

अकारण ममता । जैसे ध्रुव की साधना सफल हो गयी हो । उन्हें वरदान मिल गया हो । लगा कि अनाथ व्यक्तियों का भी भेल हो ही जाता है । पता नहीं उनके बच्चे अनाथ रहते हैं या नहीं, लेकिन यदि ऐसी संभावना हो, तो आलोच्य दो व्यक्ति ही नहीं, उसके लिए कोई और ही जिम्मेदार है, जिसके कारण दो के बीच में तीसरे के आगमन से क्रोधित होकर अभेष दीवार बना दी जाती है । लेकिन कौन कह सकता है कि वह तीसरा यूनिट अपने अनुकूल दो अन्य यूनिटों को हूँद नहीं निकालेगा ?

यह स्वप्न है या सत्य ? मैंने कहा, 'नीला, मैं तुम्हें छू सकता हूँ ?' मेरी आंखों में अंधकार-सा छाया चला गया । पानी भर आया । नीला धुंधली लगने लगी । भाग्य की सफेदी उज्ज्वल होकर चमक रही थी ।

नीला ने कहा, मैं यहाँ हूँ । मेरे पास आओ ।

हर्ष विह्वल सा मैं झुक-सा गया ।

बोला, प्रणाम ।

उसने उठाकर हृदय से लगा लिया ।

कहा, नीला बिजली के करंट से मुक्ति नहीं मिलती । लेकिन तत्त्वबोध नहीं हुआ हो, यह नहीं कहता । मैं संकल्प के साथ जीना चाहता हूँ । आज अधिक वैज्ञानिक और स्थायी आधार पा गया हूँ ।

ललाट को छूते हुए दो आंसू गालों पर चू आए ।

कुछ ही घण्टों पहले किसी सद्गृहिणी की कृपा से तुलसी-जल जिस प्रकार आशीर्वाद दे गया था, ठीक वैसे ही ।

कांपती आवाज से कहा, मुझे कभी छोड़ना मत ।

-नहीं । राम, तुम मेरे पास ही बने रहना ।

तत्त्वबोध का सारांश नीला की उस कविता से उद्बुद्ध होकर उज्ज्वल हो उठा । प्रकाश में देखा, कि मैं जिस जमीन पर खड़ा हूँ, वह जमीन

मेरी है, ऊपर तना हुआ विशालाकाश मेरा है। इस वातावरण में मैं व्याप्त हूँ, अपनी अनुभूति का संवाहक हूँ।

नीला के नाम के अतिरिक्त अभी तक उचित सम्बोधन नहीं ढूँढ पाया था। लेकिन यदि वह मेरी बहन है, अन्नपूर्णा है, दुर्गा है, तो अभी तक मुझे बहुत कुछ ढूँढ निकालना है।

जिन रत्नों को प्राप्त कर सकूँगा, उनका मोल आँकनेवाले यदि नहीं मिल सके तो इस अथाह समुद्र की निन्दा नहीं करूँगा।

आँसू अनवरत बहते चले जा रहे थे। कोई इन्हें न देखे। देखे मेरे दिल को, जिसमें मुक्त प्रकाश है; प्रकाश ही प्रकाश!!

सारा विराट विलीन हो गया और जैसे सब कुछ नीला में समा गया हो; लेकिन मेरा अस्तित्व उसमें सुरक्षित है, यही इस विराट की विशेषता है।

दो :

नीला द्वारा प्रदत्त स्नेह को नियति का संकेत कह कर उसका गौरव कम नहीं करूँगा। बल्कि, दृष्टव्य कारणों की महत्ता को स्वीकार कर, अपनी इस स्वर्गाय स्थिति की निर्मलता के सम्मुख विनीत हूँ।

नीला कैसी है, क्या है; जैसी है, क्यों है? और हम बु-लोकों के अन्तर के बावजूद भी किस एकसूत्रता से समीप आ गये, यह सब अब समझा हूँ। लेकिन उस दिन भी अपने सौभाग्य के प्रति कम गौरव महसूस नहीं कर रहा था।

स्कूल जाता हूँ। हर शनिवार को नीला बिलकुल नम्र होकर हमेशा की तरह डेमोंस्ट्रेटर के निर्देशन के अनुसार स्थिर खड़ी हो जाती है। यह स्थिति अधिक असह्य हो गयी है। पहले की शून्यावस्था अब नहीं है। पहले जैसी मूर्छना भी नहीं, तटस्थता भी नहीं। मन भागता-दौड़ता रहता है—खास कर

उन सह-विद्यार्थियों की ओर, जो नीला को देखकर कभी-कभी छिप कर आपस में फुसफुसाहट करते हुए मुसकरा पड़ते हैं। सम्भव है वे कुछ गुदगुदी महसूस करते हों। हो सकता है, कुछ कुत्सित विचारों की चर्चा करते हों— ऐसी ही अनेक कल्पनाओं में उलझ कर भटक-सा जाता हूँ।

डेमोंस्ट्रेटर-महोदय ने लक्ष्य किया, मैं वहाँ नहीं हूँ, जहाँ होना चाहिए। पास आकर टोकते हुए उन्होंने मेरी सुस्ती पर खेद प्रकट किया। उपदेश दिया कि 'प्री आते हो तो अधिक मेहनत करनी चाहिए, अधिक एकाग्र होना चाहिए।'

गर्दन झुका कर मैंने सब कुछ स्वीकार कर लिया। छिपी नजरों से जानना चाहा, कहीं नीला ने तो नहीं देख लिया ?

डेमोंस्ट्रेटर-महोदय समझा रहे हैं, कि सामने खड़ी इस मोडेल को किस तरह से रेखाओं में ढाल लेना है।

और मैं सोच रहा हूँ, इस विराट के लिए यह कागज लघु है। पेंसिल सामर्थ्यहीन।

एक नम्र-स्त्री !

मोडेल।

प्रतिकृति के लिए प्रेरणा।

उस दिन नीला कह रही थी, कि सारे विद्यार्थी निर्विकार, तटस्थ और निर्मल दृष्टियुक्त हों, ऐसी बात नहीं। स्वयं की नजर पवित्र है, इसलिए उसकी अध्ययनशील आंख रिक्त नहीं रहती। वह बहुत कुछ पा लेती है। मेरी दृष्टि में शायद अभी तक वह उज्ज्वलता स्थायी रूप से आ नहीं पायी है। तभी तो बारम्बार अनावृत नीला की ओर देखने में अस्वचि होने लगती है।

मैंने तख्ते की ओर देखा। नीला के पैरों के समीप वक्रों का ढेर अस्त-व्यस्त पड़ा था। दो चरण थे, छोटे-छोटे। एक की एड़ी उठी हुई, दूसरे से कुछ दूर। दूसरा स्थिर। चलने की क्रिया का मध्यांश ! यहीं कोई चीज है, जो कला से सम्बन्धित है। सम्पूर्ण रूप विभाज्य है, कम से कम उस समय तक, जब तक कि उसकी सूक्ष्म गति का अध्ययन करता हो। सारी क्रियाओं को समझने के बाद ही तो व्यक्तित्व का सारांश उपस्थित किया जा सकता है।

नीला के व्यक्तित्व के विराट स्वरूप को मैंने जितने करीब से देखा है, जानता हूँ कि किसी ने नहीं देखा होगा। इसलिए सम्पूर्ण काया की प्रति-कृति

कोई भी, चाहे जितनी दक्षता से बनाना चाहे, वह सम्पूर्णता प्राप्त कर ही नहीं सकता। मैं सीमा हूँ। सीमा संक्षिप्त है, इसलिए विश्वास का आधार लेकर, अपने को सामर्थ्यवान् घोषित करने में लज्जा महसूस होती है। इसलिए इस विराट के एक सुकोमल स्वरूप को समझ सका, तो उसकी महिमा और मीमांसा मुझे असंतुष्ट नहीं रखेगी। अखंडित, अविकृत भावनाओं के साथ मैं उन दो चरणों को मुद्राओं में खो गया।

नीला का एक पोज समाप्त हो गया। डेमॉन्स्ट्रेटर के आदेशानुसार पोज बदलते गये।

मैं एक ही स्वरूप में तन्मय था।

दुखी और अस्थिर—सा सोच रहा था, सम्पूर्ण का एक खंड भी जब मानवीय बुद्धि के लिए चुनौती है, तो सारे जीवन को उधेड़कर जिन्होंने रखने की चेष्टा की है, क्या वे गलत हैं?

तभी तो किसी की इज्जत एक अच्छा खासा तमाशा बन जाती है।

लेकिन जानता हूँ कि कला-शिक्षण के इस क्रम के प्रति व्यक्त विद्रोह का सशक्त तार्किक आधार मेरे पास नहीं है। नहीं है, क्योंकि चिन्मय स्वरूप को जानने और समझने के पूर्व उसे अनावरण रूप में देखना ही होता है। इस नम्रता के प्रति आज तक की संचित घृणा ही वस्तुतः गलत है, वही दंभ है, झूठ है। मौलिक रूप में देखने-समझने पर ही उस कल्पना का उद्भव होता है, जब कला जिन्दगी के करीब आ जाती है। अभ्यास का यह पहला अध्याय है। यह अनास्था कल तक नहीं थी, आज है। नीला सामने न हो, तो आगे वाले कल में नहीं होगी। इसलिए कहा मैंने, प्रस्तुत विद्रोह गलत है। गलत है, इसलिए कि मैं क्लृप्त से उठकर बाहर नहीं चला आया। प्रज्ञावाद से सम्मोहित—सा मन के एक कोने में अपने को सुरक्षित समझ कर उसी में छिप जाने का प्रयत्न करने लगा।

बोर्ड पर से उठकर देखा, वामन के दो छोटे, किन्तु तीनों लोंकों को मापने वाले चरण।

मेरी नीला के पाद-पद्म!

विराट का सूक्ष्म स्वरूप !!

जहां मेरा एकान्त समाप्त होता है; जहां भयानक उदासी खत्म होती है; जहां मुझे सब कुछ प्राप्त हुआ; देह को प्राण प्रदान करने वाली कृपापूर्ण नीला के चरण ।

दो चरणों की पृष्ठभूमि, इस राम का विनीत माथा, कि इन तीनों लोकों के अतिरिक्त विराट लोक है हृदय, इस श्रद्धा को स्वीकार करो !

करुणा छलक आई । सृजनात्मक आनन्द कलाकार की चरम-अनुभूति है । जो मैं उस एक पल भर में महसूस कर रहा था, वह राजा युधिष्ठिर सशरीर स्वर्ग जाकर भी अपने सत्य के प्रताप से प्राप्त नहीं कर सके होंगे ।

तन्द्वा भंग हो गयी । डेमोंस्ट्रेटर ने सारे स्केचेज ले लिये ।

दिल धड़क रहा था, सबको मार्क्स मिलेंगे । मुझे भी । लेकिन मार्क्स देने के अतिरिक्त भी वे कुछ कहेंगे । क्या कहेंगे, यह जानने के लिए मेरा रोआं-रोआं सिर उठाकर खड़ा हो गया ।

जो कुछ वे कहेंगे, उसे नीला भी सुनेगी, यह जानता था, और इसीलिए बारम्बार कांप-कांप कर ललाट पर चू आते पसीने को पोंछने लगा ।

सबको नम्बर मिल गए । मुझे भी मिले । किन्तु थे, यह स्मरणीय नहीं । उन्होंने मेरे स्केच को हाथ में लेकर, उसे गौर से देखा, खुद बड़े जोर से मुक्त हंसी के साथ खिलखिला उठे । विद्यार्थियों ने सहज कौतूहलवश उसे देखा । मुझे लगा कि डेमोंस्ट्रेटर की हंसी सारे विद्यार्थियों पर छा गयी ।

डेमोंस्ट्रेटर मेरी भावनाओं को नहीं समझ सका । वह केवल रेखाओं की गणित ही जानता है । लड़के बेचारे नहीं जानते कि किस बात पर हंसना चाहिए और किस तरह से हंसना चाहिए; उनके प्रति भी मुझे क्षोभ नहीं । लेकिन मैं यह देख कर घबड़ा सा रह गया; नजर उठाकर हतप्रभ सा देखता रहा, नीला भी उसे देखकर हंस रही थी ।

हंसी समाप्त हो गयी । अपना स्केच यंत्र-चालित सा उठकर ले आया । लेकिन सारे हॉल में मुझे बार-बार उसी हंसी की प्रतिध्वनी सुनाई दे रही थी । मैं सिर झुका कर बैठ गया । लगा कि जैसे उपस्थित सारे व्यक्तियों के हजार मुखों से अभी तक मेरा तिरस्कार हो रहा है ।

शेष प्रश्न यही, कि नीला बता दे कि मेरी पूजा अकारथ है ? श्रद्धा की यह भावना गलत है ? केवल भावुकता, भावावेश और उत्तेजना मात्र ? यह आस्था और विश्वास व्यर्थ है जिसके पीछे कोटि-कोटि लोगों का लम्बा इतिहास है ?

अथवा जो पूजा के योग्य है, उसका न्यूड-मोडेल होना निषिद्ध है ?

क्लास छोड़कर चला आया। किसी ने रोका नहीं। रोकने की जरूरत भी नहीं थी। स्कूल की विशाल इमारत में भाव-विहीन विद्यार्थी, लाइनों का हिसाब-किताब रखने वाला डेमोंस्ट्रेटर और 'अत्यन्त तुच्छ' नीला इस समय भी अप्रभावित ही बैठी होगी।

एक मोडेल। एक साधारण औरत। कभी कोई गंभीर बात कह गयी। हे तो कह गयी हो। लेकिन सदैव गहराई लिये हुए वह नहीं हैं। इसीलिए तो विश्वास नहीं कर सकी, कि वह अर्चना की पात्रा भी हो सकती है। जिनसे प्राप्त ज्ञान के प्रति अविश्वास है, वे पूजा के योग्य निश्चित रूप से नहीं हो सकते।

पत्थर, भाव-विहीन। भावनाओं को उत्तेजित करने वाली, और बाद में पीट मोड़कर किसी अनजाने रास्ते पर चलती हुई अदृश्य हो जाने वाली।

उस दिन कह रही थी, दुनिया में मैं अकेला ही हतभाग नहीं, और भी अनेक हैं। हैं, या नहीं; नहीं जानता। यदि हैं, तो उनका जीवन कितना दुःखदायी नहीं होता होगा ? खास कर जब कि उसी श्रेणी के लोग जानबूझ कर किसी का तिरस्कार करने के लिए उतारू हो जायें।

स्कूल पीछे छूटता चला गया। किस ओर जा रहा हूँ, यह मालूम नहीं था। याद आया कि क्लास छोड़ते समय सारे विद्यार्थियों की दृष्टि इस राम की ओर मुड़ गयी थी। इतना तो महत्वपूर्ण नहीं हूँ कि इस गरीब के प्रति इतनी सतर्कता से कुछ याद रखा जाय। लेकिन जानता हूँ कि सारे विद्या-अर्थी इस सूर्यता को भुला नहीं सकेंगे।

दिन भर पाकों और सड़कों के चक्कर काटता रहा। बारम्बार यही सोचता रहा, इतनी लांछना सहने के बावजूद भी क्या कुछ शेष रह जाता है ?

निरन्तर सोच रहा था, उसी नीला के बारे में। अच्छा भी, और बुरा भी। लेकिन सारे विचारों के आवरण को भेद कर एक ही रूप शेष रह जाता, और आत्म-ग्लानि में पश्चाताप घुल-मिल जाता, हे प्रभो, इतना बड़ा वरदान पाकर भी उसे संजोने की सामर्थ्य मुझे अप्राप्य है।

सोझ होने आयी। सबक की बतियाँ जल उठीं। व्यस्त पुरुष, स्त्रियाँ तेजी के साथ आ-जा रहीं थीं। एक होटल के पास से गुजरा। आमिष भोजन की तीव्र

गंध-सी आई। याद आया, भूख लगेगी। फिर भी सोचता रहा उसी स्त्री के बारे में। अरुचि का आधार कितना तुच्छ है? उसने हंस दिया; इतना ही तो किया, और इसके लिए मैं इस प्राप्त धन को वर्जित कह रहा हूँ?

इन सारे विचारों से मुक्त होने के लिए व्याकुलता बढ़ने लगी। सोचा, बिजली का हलका-सा स्पर्श करके, एक क्षण-पूर्व के व्यतीत को भुला दूं। लेकिन ऐसा करना चलते रास्ते में संभव नहीं; प्राणों का खतरा भले प्रत्यक्ष हो जाय। जीवन के प्रथम सौपान में, निराशा की इस चरम-सीमा के करीब जाना भयानक—सा लगने लगा।

नीला, कह रही थी 'सहना भी अपने आप में व्यर्थ नहीं। उसकी भी कामत है। इस पीड़ा को स्पष्ट करके प्रस्तुत करने का जो उत्तरदायित्व है, यदि उसे पूरा किये बिना ही प्राणों का कोई सौदा कर लूं, तो जीत और हार के निश्कर्ष पर नहीं पहुंच सकूंगा।'

कहती थी, 'मुझे बहुत कुछ देना है। जो नहीं पाया है, वह; और जो पाने का संकल्प है—वह! आज नहीं, अभी नहीं; तो तब, जब मैं बहुत कुछ जान जाऊंगा। जिस दिन जान जाऊंगा कि भावना का कौनसा आवेग स्थायी महत्व रखता है, कौनसा क्षणिक; कि जिसे संजोया जा सके, जिसे त्यागा जा सके। जब यह सब जान जाऊंगा, तब। अपने युग तथा अपने समाज को कुछ देने की जिस दिन ताकत संचित कर सकूंगा, तब।

नीला के पास तो जाऊंगा ही। त्याज्य और ग्राह्य की बात मैं नहीं जानता। नीला के सामने अपने इस अज्ञान को नंगा करके, उसे अंतिम नमस्कार करके लौट आऊंगा। कहूंगा, यहीं तक तुमसे पाना था। पा लिया। संयोग इससे अधिक की इजाजत नहीं दे पाता। इसलिए विदा के दिन आशीर्वाद दे दो। जीना चाहिए, यह जान गया हूँ। बता सको तो कहो, कैसे जीऊँ?

वापस लौटने के लिए मुझा तो मालूम हुआ, दादर के पास खड़ा हूँ। नीला का घर यहां से घूम फिर कर दस माइल के लगभग होगा। यह फासला कम नहीं होगा। कितना समय लगेगा, वहां तक पहुंचने में? कौन जाने क्षमा मांगने का जो शुद्ध संकल्प इस समय ले रहा हूँ, वह इस अर्थ में कायम रह सकेगा या नहीं? अस्थायित्व ही जिसके व्यक्तित्व की भूमिका है—उससे कोई क्या उम्मीद करे?

डर सा लगा। जाने पर, यदि वह उपहास से हंस पड़ी, तो श्रद्धा और भक्ति के साथ विनीत होकर क्षमा-याचना भी कैसे कर सकूंगा ?

नहीं, नहीं। अंतिम बार। आखिरी-बार उससे माफी मांग कर विदा हो जाऊंगा। अपनी विक्षिप्तवस्था से उसे दुख नहीं दूंगा। कहीं, ऐसी जगह चला जाऊंगा, जहां अपनी समस्त क्रियाओं को नीला की नजरों की ओट में रख सकूँ। मुझे वह दिखायी ही न दे। दे भी, तो मैं भूल जाऊँ कि यह नीला वही है, जो एक दिन कह चुकी है, कि हमेशा तुम्हारे पास बनी रहूंगी। अथवा जिसके प्रति व्यक्त श्रद्धा उसके स्वयं के उपहास का कारण बन गयी थी।

भ्रम को सत्य मान लेना ही गलती है। नीला का सम्बन्ध इतनी जल्दी पूज्य बनने के योग्य नहीं था। किसी को बिना पूरी तरह से जाने-बूझे अर्ध चढ़ाना अंधता प्रकट करना है। ऐसा ही हुआ है। यह गलत हुआ है। इसे स्वीकार कर लेना, बुद्धिमानी है। अभी अवसर है, कि इस मूढ़ता का निराकरण हो सकता है।

पूरी तरह से उसे क्या कहना चाहता हूँ, यह नहीं जानता। लेकिन उसे देखने के लिए मेरे मन-प्राण व्याकुल हो उठे। ट्रामें और बसें पास ही से घर्ती हुई गुजर जाती हैं। जी किया कि किसी में बैठकर वहां पहुंच जाऊँ। लेकिन जिसके पास पैसे नहीं हैं, वह लालच तो कर सकता है, पर साहस नहीं कर सकता। सोचा, एक आना किसी से मांग लूँ!

पर भीख ?

आज तक स्वयं-संचालित जो दान ग्रहण करना पड़ा है, वही पर्याप्त है। सिर नीचा करके, हाथ फैलाना अब संभव नहीं। भीख नहीं मांग सकूंगा।

भीड़ में बहा जा रहा हूँ, कि अनेक हमराहियों के मध्य मेरी मोडेल, नीला दिखाई नहीं देती।

रात के ग्यारह बजे नीला के घर पहुंचा। दरवाजा बंद था। लगा कि रात के इस समय एक पुरुष द्वारा किसी भद्र महिला का दरवाजा खटखटाना शोभाप्रद नहीं। दरवाजे के पास निःशब्द आकर खड़ा हो गया। लाइट जल रही थी। एकाएक समग्र चेतना नखों में केन्द्रित हो गई। नीला जाग रही थी ? मेरे लिए ? पूछेगी, इतनी देर से क्यों आया, तो क्या जवाब दूंगा ?

बिना दरवाजे पर दस्तक दिए मैंने आवाज दी:-नीला !

कोई उत्तर नहीं मिला। धीरे से दरवाजा खुल गया। वह जाग रही थी। मेरा इन्तजार कर रही थी। इस अभागे और अनाथ व्यक्ति की प्रतीक्षा। आज तक जहाँ पेइंग-गेस्ट के रूप में रहा हूँ, वहाँ तो कभी ऐसा नहीं हुआ।

धीरे से पूछा, तुम सोयी नहीं ?

-चलो खाता खालो। तुम्हारे लिए भूखी बैठी हूँ।

प्रतिवाद के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं था। इस अकिंचन के लिए वह दिन भर भूखी रही है। आज्ञाकारी बालक की तरह मैंने थाली पसार दी।

कहने का प्रयत्न किया:—नीला...!

-रात अधिक हो गयी है। सो जाओ।—उसने शासन के स्वर में कहा।

-नीला...!

वह सोने जा रही थी। मुड़ कर उसने मेरी ओर देखा, बोली, कहो ?

उत्तेजित स्वर में बोला, तुम मेरे लिए भूखी क्यों रही ?

-इतनी देर तक कहाँ थे ?

-मैं जहाँ चाहे रहूँगा, तुम्हें इस तरह भूखे रहकर, दंड देने का क्या अधिकार है ?

जैसे वह कहना नहीं चाहती हो। संक्षिप्त होकर बोली, 'राम, तुम अच्छे आदमी हो। जाओ आराम करो। सो जाओ।'

-नहीं। मैं सोना नहीं चाहता। पूछता हूँ, सुबह तुम उस स्केच पर हंसी क्यों थी ?

-सब हंसे थे। इसलिए।

-तुम भी 'सब' हो ?

-अच्छा राम। बैठो मेरे पास। एक बात बताओ, सच कहो, मैं इतनी ऊंची हूँ कि मेरी पूजा की जा सके ?

-नहीं, तुम किसी भी लायक नहीं हो।

-ठीक ही तो है। यही तो कहती थी। तो फिर वैसा स्केच तुमने क्यों बनाया था ?

-उसी गुनाह की माफ़ी मांगने आया हूँ। तुम वहाँ नहीं हो। जहाँ सोचता था। अब यहाँ कभी नहीं आऊँगा।

-अच्छा। माफ़ करती हूँ। सुबह जहाँ जी चाहे, चले जाना। जो समझ नहीं सकते, उनके लिए ईश्वर से दया की प्रार्थना कहूँगी। मेरी ओर से अपने को माफ़ ही समझना।

मेरे माथे में एक ही शब्द गूँजता रहा 'दया'। इस शब्द के प्रति मेरी संचित घृणा विभूत होती जा रही थी। क्रोध से कांपते हुए, भले-बुरे का ज्ञान भूल कर, अपने आप को भूल कर, चीख पड़ा "तुम दया करोगी ? यह अहंकार तुममें कब से आया, कहो तो ?"

क्रोध और आवेश में, पास ही बैठी नीला के गालों पर मैंने कस कर दो तमाचे जड़ दिये। आज स्वीकार करते हुए शर्म से पिघल सा जाता हूँ, एक अजीब सी तृप्ति मुझे उससे, चाहे एक पल के लिए ही सही, मिली थी।

इस अप्रत्याशित हरकत को देखकर कुछ क्षणों के लिए वह स्तब्ध बैठी रही। जरा-सा भी प्रतिवाद नहीं किया। संभवतः वह मुझसे कुछ और बर्बरता की अपेक्षा कर रही थी। होश में आया तो जाना कि क्या कुछ कर गुजरा हूँ। इसलिए करुण होकर, क्षमा-याचना के लिए संकोच के साथ कहना चाहा, नीला.....!

वह उठ खड़ी हुई। कड़ा, ठीक है। सुबह चले जाना। यहाँ रहने लायक तुम नहीं हो।

कहा, नीला.....!

-इसी समय जाना चाहते हो ? जाओ।

-नीला.....!

विह्वल दृष्टि से उस अबला को देखता रहा। उसके गाल पर मेरे सुख हाथ का निशान उभर आया था।

आज्ञा का पालन होगा, ऐसा शायद उसने उस समय नहीं सोचा था। इसीलिए, वह उठ कर पलंग पर जाकर तकिये में मुँह छिपा कर लैट गयी।

आत्म-ग्लानि से हृदय फटा जा रहा था। पशु भी ऐसा व्यवहार तो नहीं करते। मैं पशु से भी नीचे गिर गया। पतन हुआ भी तो कहाँ ? इस पाप का प्रायश्चित्त कैसे होगा ?

उसके चरण छू कर कहा, "नीला। अब कभी ऐसा नहीं करूँगा। तुम्हें कोई दुख नहीं दूँगा।"

लेकिन उसने मेरी एक भी बात का जवाब नहीं दिया। मैं पैताने सर टिकाए बैठा रोता रहा। लेकिन उसने एक पल के लिए भी मेरी ओर नहीं देखा। जाने कब, वहीं सो गया।

वह बेहोशी संक्षिप्त नहीं थी। सुबह ही उठा। देखा, नीला ने मुझे वहीं, उसी हालत में पड़े रहने दिया है।

वह अपने लिए चाय बना चुकी थी, और पी रही थी।

तिरस्कार को सह गया।

अपना सामान उठा कर, जिसमें कुछ कपड़े, दो एक पुस्तकें, ब्रशें और कागज के अतिरिक्त कुछ नहीं था, मैं नीचे उतर आया।

तीन :

नीला के यहाँ से चला तो आया, लेकिन मन नहीं माना। आत्म-ग्लानि गयी नहीं।

स्कूल तो गया ही। काम भी किया।

दोपहर हुई। भूख लगी, तो नीला बरबस याद आयी।

‘घर’ शब्द में कितनी ममता, कितना मोह है ? और मेरा ‘घर’ कितना अस्थायी एवं क्षुद्र है। सारा घर इस समय तो साथ ही ढो रहा हूँ।

इससे तो इनकार कैसे कर सकूँगा कि रात को जो कुछ कर गुजरा था वह अत्यन्त चिन्दनीय, असह्य और बहुत ही बुरा था। लेकिन जैसा भी हूँ, नीला ने एक दिन जिसे समस्त अनुराग के साथ अपने वरद-हस्त के नीचे ग्रहण किया था, वह उसे छोड़ कैसे देगी ?

यही तो प्रवृत्ति है। अपने को निर्दोष प्रमाणित कर, नीला से अत्यधिक अपेक्षा करने का मेरा स्वभाव क्यों और कैसे बन गया, यह नहीं जानता। लेकिन अनाथालय में जिसने कुछ भी न पाया हो, वह लालसा की आँखों से किसी ओर देखे तो हे प्रभो, उसे क्षमा कर दो। उसे उसके अनुकूल स्थिति दो।

विश्वास सा था कि यदि प्रार्थना करूँ, तो नामंजूर नहीं होगी। नीला सहज भाव से मुझे अंगीकार कर लेगी। कहा था उसने कि मेरे देर से आने के कारण वह भूखी बैठी रही। कष्ट सहा। दुख देने का जो अधिकार मुझे

मिल गया था; उस सर्व-प्रथम प्राप्त-सत्ता का प्रयोग पहले-पहल नीला पर ही करूँगा ? तो प्रभु के इस अमोल वरदान की उपेक्षा का प्रायश्चित्त कितने जन्मों में हो सकेगा, कौन कह सकता है ?

आठ बजे आरंभ होकर दस बजे क्लास समाप्त हो जाती हैं। फिर ग्यारह से शुरू होकर ६ बजे। पहले पीरियड में ही मन उकताने लगा। बार-बार अपना दुष्कृत्य याद आता। सो छुट्टी होते ही अनजाने में पतित, खलित, और अवसाद भरा नीला के पास चला गया।

मुझे देख कर, अनदेखा कर, पुस्तक पढ़ने में वह तल्लीन हो गयी। तीव्र उपेक्षा का वातावरण घनीभूत हो गया। कहा, “नीला, तुम्हें कुछ कहना बाकी है। नहीं कह पाया तो दुख के भार से मुक्त नहीं हो सकूँगा।”

नीला ने मेरी ओर आंख उठा कर देखा, बोली, तो ?

मैं वहीं खड़ा रहा। दरवाजे के समीप। जो कहना चाहता था वह कहने के पश्चात करना क्या होगा, यह निश्चित नहीं था। इसलिए अन्दर प्रवेश नहीं कर सका। कहा, ‘इस विशाल संसार में तुम ही तो एक हो, जिसके सामने मन की कोई बात कह सकता हूँ। तुम इस दुख को नहीं समझोगी; तो बताओ, किसके पास जाऊँ ?’

पुस्तक बंद करती हुई बोली:—अपना ही दुख कम नहीं है राम ! उसे संभाल लूं तो वही काफ़ी है। किसी और का बोझ संभालने की जो मिथ्या धारणा कल तक थी, वह आज नहीं है; और जब आज नहीं है, तो उसे स्वीकार कर लेने में मुझे लज्जा नहीं।

दुखी हुआ। कहा, नीला कल पागल हो गया था। कारण...

—मैं क्या करूँ कारण जानकर, और उसका परिणाम भी जानकर ?

—एक दिन तुम इतना प्यार जता रही थीं, आज मैं भिखमंगे की तरह तुम्हारे द्वार पर खड़ा हूँ, लेकिन तुमसे ‘आओ’ तक नहीं कहा जाता ?

—इतनी उम्मीद तुम बिना कुछ जाने बूझ किसी से क्यों लगा बैठते हो ?

जिस दया के प्रति मेरी घृणा की सीमा नहीं, उसी के लिए मैंने दोनों हाथ पसार दिये थे।

जैसे वज्र गिर गया हो। दोनों तनी हुई भुजाएं लटक गयीं हों। लगा कि जैसे वह झूठ बोल रही है। लेकिन यह आरोप सिद्ध करने वाला व्यक्ति मैं नहीं हूँ, यह जान गया।

“ जो हो । जिनकी गलती है, वे उसका प्रायश्चित्त करेंगे ही । इसके अतिरिक्त चारा नहीं । ” मैंने कहा “ मैं तो अनाथ हूँ । दया तो पायी । लेकिन किसी की दया पर मेरा अधिकार नहीं है, यह अब जान गया हूँ । इसलिए मेरा रुठना कोई मायने नहीं रखता । तुम्हारे यहां रहता था, सो तुम्हारी कृपा के लिए धन्यवाद दे दूँ । इससे अधिक क्या करूँ ? चला जाऊँगा, तो भी कुछ नहीं होगा । मेरे जैसे व्यक्ति का कोई महत्व है या नहीं, और उसके न होने से कोई हानि होगी, यह नहीं जानता । होती भी हो तो उसके लिए तुम्हें चिन्तित होने का कोई कारण नहीं । फिर भी जिसे पल भर के लिए स्वर्ग का सिंहासन मिला हो, उसे उस पल के प्रति गौरव करने दो नीला । और महज इसलिए, कहने दो मुझे एक बात, जिसे बिना कहे गौरव धुंधला रह जाएगा । ”

नीला गौर से मेरी ओर देख रही थी । जैसे वह मेरी बातें सुनने के लिए तैयार हो । कहा, “ अन्दर आकर, कुर्सी लेकर बैठो । कहो, जो कहना चाहते हो । ”

धारे से आकर कुर्सी खींच कर बैठ गया । कहा, “ स्वर्ग का जो सान्निध्य प्राप्त हुआ था, वह कैसा था; यह तो कह चुका हूँ । सो, इन सारे तुच्छ विद्यार्थियों के सामने नग्न-रूप में तुम्हें देखने से अरुचि होती है । घृणा होती है । व्यक्त अनादर की फुसफुसाहट मुझसे बर्दाश्त नहीं होती । बस । इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कहना है । ”

उसने जवाब नहीं दिया । लगा कि मैं अपनी बात पूरी नहीं कह सका हूँ । कहा, तुम्हीं ने एक दिन कहा था, ये सारे विद्यार्थी भले और निर्विकार ही हों, ऐसी बात नहीं । वे विकार से बुझी हुई आंखों से तुम्हारा अपमान करें, अब यह बर्दाश्त नहीं होता । कहोगी, यह प्रज्ञा है । सो है । तुम उपास्थित नहीं होती तो किसी अन्य मोडेल के बारे में ऐसा नहीं कहता । लेकिन जो उन्हें ऐसा व्यक्ति मिल जाता जिसके आप्रह में इतनी याचना होती तो वह इस हीन-कर्म को त्याग ही देती । तुम्हें पूजा के स्थान पर देखा, इसके अलावा अब नहीं देख सकता । लगता है, जैसे अन्धा हो जाऊँगा ।

मेरी सांस तेज चलने लगी थी । नीला ने लक्ष्य किया । और कुछ कहता, इससे पहले उसने रोक लिया, कहा, मेरे बारे में सुनोगे ? क्या होगा, उससे ? मेरी नम्रता के प्रति तुम्हें रोष है, बहुतों को होगा । मुझे विद्यार्थियों

की दृष्टि के प्रति क्रोध है। और वह गलत भी नहीं है। लेकिन इसका समाधान क्या है? मेरे पास नहीं है। सो, यही मानती हूँ, जो प्राणों की चेतना को नहीं जानते उन्हें ऐसा प्रश्न उठाने का कोई अधिकार नहीं। मैं चेतना के अभ्यन्तर को नम्र देख सकती हूँ, उसके उद्बोधन को प्रस्तुत स्वरूप में स्वीकार कर सकती हूँ, इसलिए विपरीत दिशा की ओर आकर्षित नहीं हूँ। जहाँ हूँ, सोचती हूँ, यहीं ठीक हूँ।

-अभ्यन्तर की गहराई को समझ जाना सचमुच बड़ी बात है नीला! लेकिन इससे क्या होगा?

-इन तथ्यों से परिचित हुए बिना सत्य अप्राप्य है। सत्य के बिना सिविलाइजेशन नहीं, उससे बिना मनुष्य नहीं, मनुष्य के बिना प्राणियों की श्रृष्टि सार्थक नहीं। इस तथ्य को संक्षिप्त मत समझना। यह बहुत विस्तृत है। इसे अपने पराक्रम के साथ जो प्रस्तुत कर सकेगा, करने के लिए जो साधना करेगा, उसका मूल्यांकन कोई करे या नहीं, लेकिन विघाता अपने खाते में भूल नहीं करेगा।

-यह देख चुका हूँ कि वास्तव में जीवन के हर भाग में भावनाओं की यही ऊँचाई नहीं होती। इसीलिए दम्भ के रंगीन आवरणों के पीछे जो अपनी कुत्सित लालछना को छिपाना चाहे, उसे अपने को अमूल्य घोषित कर गौरव तो नहीं करना चाहिए।

-जो उपस्थित नहीं है, इसलिए वह 'अस्ति' नहीं? यह तुम्हें किसने कहा? आडंबर में लिपटा हुआ स्थूल व्यक्ति अथवा पदार्थ ही सत्य नहीं। अनावरण होने पर जो सूक्ष्मता रहती है, वही परम-सत्य है। इसलिए कि वहाँ शक्ति नहीं। अनावरण करते जाओ सत्य का उज्ज्वल और उज्ज्वलतर स्वरूप प्राप्त होता जायगा। प्राप्त सत्य जिसके पास हो, वह अपनी साधना को भुलावे में आकर अमार नहीं मानेगा।

-आवरणों की यह भाषा मेरी समझ में नहीं आती। कहो तो, जो कुछ मेरा कृतित्व है, वह आवरण नहीं? उसे भेद कर, जो मैं हूँ, विनीत जिज्ञासु और प्यार का भूखा, वह सत्य नहीं है? फिर कृतित्व अथवा आवरण को महत्व देकर व्यक्ति को अपमानित करने का अर्थ क्या समझाओगी?

-तुम बालक नहीं हो राम। तुम्हें सहना आसाम नहीं। हो भी तो रुचि नहीं होती। नाराज नहीं हूँ। सोचती यह हूँ कि हम एक दूसरे को समझने-

सहने को तैयार नहीं। तुम शायद हो भी। लेकिन मैं समझती हूँ, कि यह व्यर्थ है। सो ओबजेक्ट के रूप में जो सत्य है, वह दृष्टा पर लादा ही जाय, यह तो न्याय की बात नहीं हुई।

“कल तुम्हारे उस जंगलीपन को सह गई। अब उसका आभास भी नहीं सह सकती। इसलिए कि उसके सहे बिना काम चल सकता है। जैसे सहना मजबूरी है, उनकी संख्या भी कम नहीं। फिर व्यक्तित्व के अनेक पहलू भी तो हैं। मेरे भी, तुम्हारे भी। कुछ ऐसे भी, जिन्हें देखने के आधार हमारे भिन्न हैं। उस दिन तुम्हारी तिक्तता की कल्पना करके, आज उदासीन हो जाती हूँ कि जैसे भी सम्बन्ध अब तक रहे हों, वेही पर्याप्त हैं। इससे अधिक कुछ नहीं हो पाता, तो किसी से किसी प्रकार की शिकायत क्यों करूँ ?

—नीला, कोशिश करें एक दूसरे को सहने समझने की। इसे असंभव मत कहना।

—कोशिश करके भी तुम्हारे हाथ कुछ लग सकेगा; ऐसा विश्वास नहीं होता। कई ऐसी चीजें हैं, जिन्हें खोल कर नहीं बता पाऊँगी। लेकिन एक दिन तुम सब जान जाओगे। इसीलिए तुमसे छिपाने की अधिक कोशिश नहीं करूँगी। एक मौलिक बात है। पैसे के बिना काम नहीं चलता। मेरे पास आमदनी का एकमात्र जरिया इस काया का प्रदर्शन और उपयोग ही है। यह लम्बी कथा है कि जीवन ने ऐसा रूप धारण क्यों कर लिया ? उसका सारांश यही है कि यह सब जबर्दस्ती नहीं हुआ। स्वेच्छा से हुआ। इसके अतिरिक्त कुछ कर नहीं सकी। कोई मार्ग ही नहीं मिला। जो रास्ते थे, वे मेरे बस के नहीं थे। आत्मा उसे स्वीकार नहीं कर सकी। अपने आप को संजो कर एकान्त में नष्ट कर देने का मेरा आग्रह कभी रहा नहीं है, रहेगा, ऐसा भी नहीं सोचती।

बीच में ही मुंह से अचानक निकल गया:—लेकिन यह तो पाप है ?

जैसे उससे सुना न हो, कहती गयी—जो हिसाब नहीं रखता न राम, वह कितना ही ईमानदार क्यों न हो, बाजार में उसका मूल्य नहीं होता। लेकिन हिसाब रखने वाले से यदि जोड़-बाकी में कहीं गलती रह जाय, तो उसे उदार दृष्टि से सहज ही क्षमा किया जा सकता है। पाप नहीं करूँगी, तो धर्म करूँगी। दोनों का हिसाब तो रखूँगी ही। पाप जो है, उस ओर से आँख मूंद कर, धर्म के नाम पर अपने कर्मों का मूल्यांकन करना तो हिसाब न रखने की बात हुई। यह भूल नहीं। यह तो भ्रम है।

अजीब से इस तर्क का जवाब नहीं दे सका, संकोच से पूछा:—लेकिन इससे तुम्हें आत्म-ग्लानि नहीं होती ?

—होती है। तब, जब कि देखती हूँ कि पाप और पुण्य के बीच में पैसा वजन बन जाता है। ऐसा नहीं होता तो ग्लानि नहीं होती। अफसोस नहीं होता। नित नये मोडलों को देखकर उनके प्रत्येक सूत की समझना कम नहीं। मैं तो नहीं मानती।

—अच्छा तो है। सिद्धान्तों की बड़ी बातों में पैसे का व्यवसाय बुरा रहता हो, शायद ऐसा नहीं होता।

मेरा व्यंग छिपा नहीं रहा। जानबूझ कर मैंने चोट की थी। वह विचलित नहीं हुई। बोली, 'घटनाओं में सत्य देखना होता है राम, सत्य की शर्तों पर घटनाओं का अवमूल्यन इस जीवन के लिए उपादेय नहीं। व्यवहार्य नहीं। निभ नहीं सकता। इसलिए कि जो कुछ घट रहा है; घटेगा, वह मेरे बस का नहीं। उसके संचालक के बारे में सीधे रूप में मुझे कुछ मालूम नहीं। लेकिन सत्य को ढूँढ़ने का मेरा आग्रह हो, तो वह एक व्यक्ति का प्रयास ही रहेगा। इसलिए घटनाओं की दरिद्रता के साथ मेरे सत्य-शोध के प्रयत्नों की इयत्ता समाप्त हो जायगी, ऐसा छल में अपने साथ नहीं कर सकती।

—मान लूंगा नीला, कि तुम जो कुछ कहती करती हो, वही परम-सत्य है। ठीक है। इस बारे में मैं अधिक नहीं जानता। फिर भी यही कहना है कि यह कम खतरनाक रास्ता नहीं।

—खतरे से डरने की भली बात कही। रास्ते पर चलना भी खतरनाक है। घर में बैठे रहना भी। जो अभाग्य के बारे में इतना उत्सुक है, उसे दुर्भाग्य के नक्षत्र भी प्यार करने लगते हैं। तुम्हारी इस बात पर एक कहानी याद आ जाती है। किसी व्यक्ति ने समुद्र पर ही समय बिताने वाले एक नाविक से पूछा, अरे! तुम समुद्र में यात्रा करते हो, यह तो बहुत खतरनाक है। आगे उसने पूछा कि उसके पिता और पितामह की मृत्यु कैसे हुई, तो उसने बता दिया, कि समुद्र में हुई। कारण बताये, तूफान से हुई, भँवर में नाव फँस गई, इससे हुई। किसी समुद्री मछली ने नाव उल्ट दी, इससे हुई। पूछने वाला दया के स्वर में बोला, हे प्रभु, कितना भयानक काम है, इसे छोड़ दो भाई।

वह रुकी। मुझे लगा कि अभी तक आगे कुछ कहना शेष है।

वह कहती गयी, “नाविक ने पूछा, अच्छा बताओ तो, तुम्हारे पिता, पितामह और उनके पिता की मृत्यु कैसे हुई? प्रश्न पूछने वाले ने याद करके कहा, एक की मृत्यु मलेरिया से हुई, दूसरा हार्ट फेल होने के कारण मर गया। गोली लग जाना तीसरे की मृत्यु का कारण है। इस पर नाविक अपने आपको अधिक सुरक्षित मानकर, प्रश्नकर्ता की दया की अवहेलना कर चलता बना।”

मैं उसके प्रत्येक शब्द को गौर से सुन रहा था। कहा, उदाहरण सापेक्ष है नीला। लेकिन सोचो तो, जलती आग में ख़ामख़ाह हाथ डाल कर उसे जलते देखना तो शहादत नहीं। बुद्धिमानी भी नहीं।

—लेकिन आग की पीड़ा को सही रूप से जानने के लिए कोई अपना हाथ जला भी बैठे, तो मैं उसे असार और मूर्खता नहीं कहूंगी।

मैं चुप हो गया।

उसने पूछा, तुमने खाना खा लिया?

—नहीं। पैसे नहीं हैं।

—तुम्हारे कुछ पैसे मेरे पास हैं। दूँ?

—दे दो।

सम्बन्धों की समाप्ति स्पष्ट हो गयी। निर्लज्ज—सा होकर पूछ बैठा, तुम्हीं न खिला दो?

—मैंने खा लिया है। कहो तो तुम्हारे लिए बना दूँ?

औपचारिकता के स्वर को मैं भी पहचान सकता हूँ। आगे कुछ नहीं पूछा। उसने इसे नकारात्मक ही समझा। अच्छा हुआ।

इस आदि—गुरु से जितना कुछ जानता जाता हूँ, उतनी ही यह दुरुह होकर उपास्थित हो जाती है।

एक नूतन रूप, जिसमें मेरा तिरस्कार करने की कामना सम्भवतः न भी हो; लेकिन जो अपना अपमान करके भी उसे महसूस न करने की शपथ लिये हुए है। चाहे जो तर्क हो, नीला वेदया है, यह जान कर दुख ही हुआ, विरक्ति भी हुई। घृणा नहीं हुई हो, ऐसी बात भी नहीं।

आलमारी खोलकर पैसे लाकर उसने मेरे हाथ में रख दिये। ले लिये। कहा, “चलता हूँ नीला। तुमसे तर्क में जीत सकूंगा, ऐसी आशा नहीं। इतना ही

पूछना है कि 'वेद्या' के प्रति आज तक, एक विशेष प्रकार का जो संस्कार चला आ रहा है, वह क्या नितान्त मिथ्या है ?”

‘वेद्या’ शब्द से नीला को चोट पहुंची। बोली “संस्कार का अर्थ ही रुढ़ है राम। इसका आगे विकास होता है या नहीं, सो नहीं जानती, लेकिन जड़ता है, यह जानती हूं। कभी-कभी ऐसा होता है कि जड़ता स्थूल रूप में स्वस्थ होती है। लेकिन वह रहती जड़ता ही है।”

“संस्कार मेरे भी है। तुमने ‘वेद्या’ कहा। मुझे अच्छा नहीं लगा। इस शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत मैं आ जाती हूं—यह सही है। लेकिन इसे गौरव के साथ, विशेषण के रूप में अपने साथ जोड़ना नहीं चाहती। कहा न मैंने, वेद्या बनना मुझे पसन्द नहीं। शरीर देकर धन लूं, यह ठीक नहीं लगता। इसे संजोकर, पवित्र बनाये रखने का दंभ भी मुझ में नहीं। लज्जा और शर्म नहीं, यदि मीडियम के रूप में पैसा न होता। बच नहीं पाती—इसलिए स्पर्द्धा भी नहीं रही। कभी अन्तर्दृष्टि से देख सको, ऊंचे कलाकार बन सको, तो इस व्याकुल-वेदना के मौलिक स्वरूप को समझने की कोशिश करना; और समझाना उन्हें, जो नहीं समझ पाते हैं। पैसे के विनिमय में शरीर का सौदा महंगा है। इसलिए यदि कभी पैसे प्राप्त करने के लिए कोई दूसरा तरीका निकाल सकी, तो तुम्हें खुश करने के लिए समय पर समाचार दूंगी।

—तुमने ठीक कहा था नीला। समझना आसान नहीं है, और सहना भी। तुम मुझसे बड़ी हो। हर मायने में, इसलिए प्रणाम करता हूं।

विनीत होकर उसके चरण-स्पर्श किये, तो वह कुछ संकुचित—सी हो उठी।

जाने लगा तो उसने रोक कर बुलाकर कहा, ‘उस दिन तुमने जो चित्र बनाया था, वह मुझे दोगे ? जिन चरणों की तुम पूजा करना चाहते हो, वे मेरे लिए भी शायद कम महत्वपूर्ण नहीं होंगे। सच, राम, सोचती हूं, अपनी इस आत्म-अहंकार की वृत्ति के बारे में, कि अपने चरणों की खुद ही पूजा किया करूंगी। तुम मुझ पर कोई लालचना तो नहीं लगाओगे ?’

स्केच मेरे पास ही, थैले में था। लगा कि अपने आप में वह पूर्ण नहीं है। अपूर्ण भेंट क्या करूं ? सो कहा, ‘दूंगा !’

उसने रोका नहीं। मैं नीचे उतर आया। सीढ़ियों के पास ही एक सज्जन मिल गये। बड़ी तेजी से ऊपर जा रहे थे। एक क्षण के लिए रुक कर पूछा, ‘मिस नीला यहीं रहती हैं ?’

मैं अपने में ही मगन था। कहा, 'हां, यहीं। पहले माले।'

सोच रहा था नीला वेदया है। इसे वह ठीक समझती है। क्यों और कैसे, यह जानने के लिए यह जीवन पर्याप्त नहीं।

सोचा, जो एक आदमी अभी-अभी सीढ़ियों के पास मिल गया था, वह नीला का ग्राहक ही तो नहीं था ?

मालूम हो जाय कि 'था', तो क्या करता ?

छिः छिः कर उठा—नीलारानी वेदया ! वेदया !!

चार :

स्कूल से छूटा, तो एक पंजाबी रेस्टोरेंट में चला गया। दो रोटियां लीं, एक दाल। पांच आने लग गये। एक रोटि और लेना चाहता था। पर संयम रखा।

पेट भर गया तो नवीन परिस्थितियों पर दृष्टि दौड़ा गया। सोने और नहाने धोने का इन्तजाम स्कूल के एक चपरासी के साथ हो गया। पांच रुपया मासिक निश्चित हुआ। पांच आने के हिसाब से खाने का खर्च नियमित हो जाय, तो चैन से कटेगी, यही सोचा।

फिर भी नीला की बात भूल नहीं। सारे तर्क-वितर्कों को याद नहीं रख सका। लेकिन उसने 'चरण-रज' चित्र मांगा है, इसी का ख्याल रहा। इसलिए धोबीतलाव के पास, और मेट्रो सिनेमा के सामने, जहां पर पब्लिक-यूरीनल्स बने हुए हैं, और जिसके पीछे विशाल मैदान फैला हुआ है, बैठ गया। थैले से उस दिन की वह कृति निकाली। कुछ क्षणों तक एकटक देखता रहा।

एक लेम्प पोस्ट है, जिससे पर्याप्त लाईट मिल जाती है। यूरीनल्स पास हैं, इसलिए व्यर्थ ही भीड़ जिज्ञासा और कौतूहल लेकर एकत्रित नहीं होती। प्रतापी विद्यासागर की कथा पढ़ी थी, इसी तरह लेम्प-पोस्ट के सहारे अध्ययन करते-करते एक दिन वे राष्ट्र-पुत्र बन गये थे। आज उसी तरह मैं बैठा हूं। इस राम का कृतित्व उचित सम्मान पाये, इस संकल्प के साथ।

रात भर जागता रहा। स्केच तैयार करता रहा। चित्र को शब्द सही रूप से और सम्पूर्ण आकार के साथ प्रस्तुत नहीं कर सकेंगे, इसलिए उसकी बाहरी रूपरेखा के बारे में ही कुछ कह सकता हूँ :-

दो सुकोमल चरण, दोनों गतिशील। एक वर्तमान में, एक भविष्य की ओर। पृष्ठभूमि में लम्बी राह। अनन्त समुद्र के सम्मुख एक नन्ही-सी बूंद के समान एक व्यक्ति, साफ कहीं, मैं स्वयं, चरण-चिह्नों पर माथा नवाये, विनीत।

सचमुच नीला के कुछ रूपों पर मेरी श्रद्धा अखंडित, अविभाज्य, एक इकाई ही रहेगी। लेकिन उसके कदमों के साथ चलने की सामर्थ्य मुझमें नहीं। पथ के प्रति एकाग्र विश्वास भी नहीं। मैं तो सिर्फ विनीत हूँ। जहाँ तक वह आयी है, जिस रूप में अब तक वह प्रस्तुत है उसके सम्मुख झुका हुआ।

स्केच बनाता, रबर से मिटाता, फिर उसे तैयार करता। रात ढलती गयी। मैदान सुनसान हो गया। एकान्त गंभीर। हवा सर्द। भोर का सितारा जब चमकने लगा तो मैंने आसमान की ओर नजर उठा कर देखा, अनुमानतः उस समय चार बजे होंगे।

पूरे आठ घंटे तक मैं अपनी एक भावना के ईर्द-गिर्द घूमता रहा। मैं, मेरी श्रद्धा, नीला का सम्पूर्ण व्यक्तित्व—नीला का उन्नत प्रशस्त स्वरूप और मैं—तुच्छ, हीन, रज!

कृतित्व के निर्माण का सुख कलाकार ही जान सकता है। 'वह बहुत सुखी हुआ,' इतना कह कर उसका आभास मात्र ही दिया जा सकता है, जो उसने कृतित्व के कारण प्राप्त किया होगा। जी किया कि तुरन्त जाकर नीला को दे आऊँ। वह देखे। प्रसन्न हो। मुसकरा दे। मैं धन्य हो जाऊँ।

मैंने कागज पत्तर संभाले। बैठा तो घास के तिनके कपड़ों में चिपक गये थे। झाड़-पौछ कर उन्हें अलग किया। कपड़ों की सर्राहट उस शांत वातावरण में संगीत की तरह मधुर-सी लगी। यही शृंगार था। इस क्रिया की वह कैसी सुन्दर व्यवस्था थी!

धाबीतलाव से मरीनलाइन्स-स्टेशन का पुल पारकर, मरीन-ड्राइव पर आ गया। उत्साह और मस्ती से भरा हुआ था। तेजी से दौड़ने लगा। आज जितनी प्रसन्नता महसूस की, उतनी फिर कभी नहीं कर सका। हाँफ गया तो रुक गया। सोचा, दौड़ने से रास्ता जल्द ही समाप्त हो जायगा। घाट से नीचे उतर कर चट्टानों पर आ गया। चन्द्रमा की दूधिया चांदनी अभी तक प्रकाश

डाल रही थी। चट्टानों पर संभल-संभल कर कदम रखता हुआ, तेजी से दौड़ता आगे बढ़ने लगा। दो बार फिसलते-फिसलते बचा। याद आया, नीला ने कहा था, 'कभी-कभी आग में हाथ डाल कर चिर-अनुभूत अनुभव को दुहराने की भी आवश्यकता पड़ सकती है कि हाथ जलता कैसे है ?'

इससे भी संतुष्ट नहीं हुआ, तो चट्टानों से उतर कर रेत पर आ गया। फिर दौड़ने लगा। जैसे समुद्र लहरों के साथ खेल रहा था, वैसे ही मैं लहरों और किनारों के बीच मुक्त किलोल करता हुआ भागा चला जा रहा था। शीतल समुद्री हवा सांय-सांय करती हुई थिरक रही थी। उस ठंड के वावजूद भी मैं पसीने से तर हो रहा था।

किनारा खत्म हुआ तो स्वीमिंग-पूल आ गया। घाट पर चढ़ने के लिए मुड़ा तो किमी टार्च की रोशनी मेरी आंखों में कौंध गयी। मैंने उस ओर देखा, रोशनी मेरे साथ ही साथ घूमी। यह व्यवधान अच्छा नहीं लगा। स्थिर हो कर एक क्षण के लिए रुक गया। रोशनी बंद हो गयी। कुछ ही देर बाद एक सफेद छाया मेरी ओर बढ़ने लगी।

दूर तक फैला हुआ वह स्तम्भ मुक्त वातावरण, उसमें मेरे अतिरिक्त किसी और का भी अस्तित्व! या तो मैं अपनी छाया से ही डर गया हूं, अथवा सचमुच कोई भूत-प्रेत है। ऐसी ही कुछ कल्पना हुई थी। वह सफेद छाया सरकती हुई, मेरे बिलकुल करीब आ गयी। टार्च जला कर कठोर स्वर में पूछा, 'कौन है ?'

कोई आत्मीय नहीं था। नाम बताना व्यर्थ था। लेकिन बताया, कहा, राम हूं।

-यहां क्या कर रहे हो ?

-घूम रहा हूं।

-यह भी कोई घूमने का वक्त है ?

-इसके लिए कोई किसी से राय ले ?

-लेनी होती है।

-होगी; नहीं ली।

-अकड़ कर क्यों बोलते हो ?

चुप हो गया। सामने पुलिस इन्स्पेक्टर था।

-हवालात जाने का इरादा है ?

-नहीं, ऐसी तो कोई योजना नहीं।

-सीधे घाट पर चलो। इधर नहीं।

-अच्छी बात है।

-सच बताओ, सुसाइड करना चाहते हो ?

-ऐसा तो नहीं कर रहा था।

-संदेह हो जाय, तो तुम्हें गिरफ्तार कर लें।

-सो तो आपका काम ही है, करिये। मना नहीं कहूंगा। कहूंगा, तो भी आप मानेंगे नहीं। लेकिन यह मत कहिए, कि आत्म-हत्या कर रहा था। विश्वास कीजिये आज तक आत्म-घाती बातें ही सोचता रहा। आज पहली बार जीवन की बातें सोचीं हैं। आज बहुत बढ़िया काम किया है। जिसका काम है, उसे दूंगा तो वह खुश होगी। सुबह, बिल्कुल ऐन सुबह बुलाया है। इसीलिए तो जल्द ही चल पड़ा हूं। लेकिन इस समय पांच से अधिक नहीं बजे होंगे। सात तो बजने ही चाहिए। इसीलिए समय बिता रहा था। घाट पर चलता, तो समय जल्द ही खत्म हो जाता। फिर किसी के मकान के सामने बैठ कर इन्तजार करना तो अच्छी बात नहीं। क्या कहते हो ?

वह मेरी बातों से उकता-सा गया। उबासी लेते हुए बोला, 'फालतू की बात मत करो। बोली, मरने की बात तो नहीं करता है? थोड़े में जवाब दो।

लेकिन मैं संक्षिप्त नहीं हुआ। कहा, 'नहीं साहब; नहीं। आपके राज में ऐसा कोई कर सकता है क्या? मेरे जैसे आदमी आत्म-हत्या करने लगे, तो पता नहीं हिन्दुस्तान के कितने नौजवान भी ऐसा ही कर डालें! कर लें, फिर तो गिरफ्तारी की बात नहीं। करने की सोचते हैं, उन्हें आपके कानून की किसी धारा से गिरफ्तार करना संभव हो, तो इन्स्पेक्टर साहब, आप देश के ८० प्रतिशत लोगों को आंख मूंद कर गिरफ्तार कर डालें !

अबकी शायद उसे मेरी बातें दिलचस्प लगीं। बोला, सिनेमा के डायलोग बोलता है बे ?

फिर टार्च जला कर मेरी ओर देखा। चेहरे से अन्दाज लगाकर पूछा, स्टूडेण्ट है ?

-यस सर।

-कौनसे कालेज में पढ़ता है ?

-आर्ट्स स्कूल में।

-घर में कोई नहीं है ? रात भर आवारागदीं करता है। आर्टिस्ट है क्या ?

-आर्टिस्ट हूं। घर में कोई नहीं है। रातभर आवारागर्दी नहीं करता।

-यू नो पेंटिंग? हमारी तस्वीर बना सकता है?

-बना सकता हूं।

-कितना पैसा पड़ेगा?

-जितना आप दे दें।

-कल स्कूल के फाटक पर मिलना। हम आयगा। अच्छा?

-ठीक! अभी हम चलता है। आपके कोई साथी पूछें और मुझे देख लिया हो तो कह दें, आत्महत्या नहीं कर रहा था। या कह दें, भाग गया। अच्छा है कह दें, मर गया। किस्सा खत्म। नमस्कार! गुडमार्निंग!

बिना प्रत्युत्तर सुने भाग गया।

समुद्र-स्नान के लिए आने वाली मारवाड़ी और सिन्धी महिलाएं धीरे धीरे कुछ गुनगुनाती हुई आने लगी थीं। क्या जाने वह श्रद्धा थी, भक्ति थी, ज्ञान था, या संस्कारों का जड़ित प्रवाह मात्र! लेकिन यह निश्चित बात थी कि प्रशान्त समुद्र ने उनमें से किसी भी रागिनी का तिरस्कार नहीं किया। विशाल वातावरण में सब कुछ अन्तर्भूत हो गया।

पौ फट चुकी थी। अरुणिम उषा की लज्जा मन्द गति से छितरने लगी। चिल्ड्रेन-गार्डन्स के कौवे बोलने लग गये थे। विभावरी बीत चुकी थी।

बड़े उत्साह के साथ नीला के घर पहुंचा। किवाड़ खटखटाये। अन्दर से प्रत्युत्तर में ठहरने के लिए कहा गया। गलियारे के मध्यम प्रकाशमें स्केच देखा; गौरव और संतोष-सा महसूस हुआ।

दरवाजा खुला। तेजी से रात वाले महोदय बाहर निकल कर सीढ़ियों से उतर कर अदृश्य हो गये।

एक व्यक्ति का इस तरह से चला जाना, उसकी सारी कहानी कह गया। जिस विषय में कल बात हो रही थी उसका प्रत्यक्ष रूप यह था! सारा उत्साह तिरोहित हो गया।

जिन चरणों का ध्यान लगाये मैं रात भर समाधि में मग्न रहा, वह यही नीला है? काम-लिप्सा में लिप्त, मांस-पुंज! बुद्धिवाद की बातें बघारती है; शहादत की कहानियां कहती है। लेकिन उसका सारांश है विलास का उफनता

हुआ आग्रह ! तपस्या कर पाती, तो यह दृश्य उपस्थित नहीं होता । विलास का मोह न होता, तो उसकी कालात नहीं करती ।

जिसके चरण-रज बन जाने मात्र में संतुष्ट हो रहा था, उसका आलोचक ही नहीं, निन्दक भी हो उठा । नीला ने ठीक ही कहा था, कि सहने की सीमा होती है, और अपेक्षा की भी । वह यहीं समाप्त होती है, यह जान गया हूं ।

जिन चरणों की महिमा के इर्द-गिर्द रात भर अथक परिक्रमा लगाता रहा; वह इससे अधिक कुछ भी नहीं है, कि एक पुरुष आता है, रात भर कौंध-कौंच कर चला जाता है । और वह हंस कर अपनी उस सामर्थ्य का बखान करती है, कि यह सब वह भुला चुकी है ! यही होना था, इसलिए उसे होने देती है । लेकिन संसार की सारी स्त्रियां ऐसा ही नहीं करतीं । अन्यथा मेरे जैसे अनाथों से संसार भर गया होता ।

जी में भाया कि स्केच को फाड़ डालूं ।

दरवाजा खुला । मुंह से अनजाने में ही निकल गया 'हे प्रभु !' दरवाजे पर माथा टेक कर, थके हुए स्वर में इतना ही कहा, 'अन्दर नहीं आऊंगा । यह व्यतीत साथ ले आया हूं । स्थूल है, यह तुम्हें मेरी याद दिला सके, तो इसे अपने पास रख लो । सोचता हूं, प्रथम-चरण-अर्चना ही मेरे लिए पर्याप्त है । तुम जहां हो, वहां तक मैं पहुंच नहीं सका; इसलिए आज मोह भेद हो गया । व्यर्थ प्रयत्न शेष हो गये ।'

जो कुछ कहा था, उसमें तिरस्कार की भावना नहीं थी । जो महसूस कर रहा था, वही कहा भी था । अस्त-व्यस्त वृत्तों को ठीक करती हुई, बिखरी हुई केश-राशि को संभालती हुई, नीला अजीब से कर्ण स्वर में बोली—हाथ जोड़ती हूं । अन्दर आ जाओ, राम ।

हतप्रभ-सा दरवाजे पर माथा टेके उसी तरह खड़ा रहा ।

पुकारा—आओ ।

सम्मोहित-सा आगे बढ़ गया ।

हाथ पकड़ कर उसने पलंग पर बैठने को कहा । बैठ गया । विचार आया, यह है वह गंदा बिलौना, जहां जाने कैसा आदमी रात भर अपने जी की गंदगी बिखेरता रहा होगा । नीला को पैसे मिल गये । उसकी ग्लानि समाप्त हो गयी । पर मैं तो इतना सहज-गम्य अनुभूत नहीं । जो काला है, जो पाप है, उसे तर्क पेश कर, पुण्य कह नहीं पाता ।

देखा, नीला सचमुच बुरी तरह से रो रही थी। जरूर कोई अनहोना बात हुई होगी। एकाएक वह मेरे घुटनों पर सर टेक कर फफक पड़ी। हिचकियों के साथ पूछा—राम, तुम मुझे प्यार करते हो न ?

—उठो नीला। यह क्या कर रही हो ?

—हां या ना मैं कहो। तुम मुझे प्यार करते हो ?

—करता हूं।

—श्रद्धा भी ?

—शायद। शायद नहीं।

—झूठ मत बोलो राम। कहो, 'करता हूं, निश्चित रूप से करता हूं।'

—अच्छा। निश्चित रूप से करता हूं।

—मेरे सुख के लिए कुछ कर सकते हो ?

—बस का होगा, तो कहंगा।

—मैं मरना चाहती हूं राम !

यह प्रश्न है या उत्तर, साफ समझ नहीं पाया। इसलिए खामोश रहा। मौत की भाषा गलत है। इसलिए नीला की उस अभिलाषा का समर्थन नहीं कर सका। बोला, 'यह मत कहो।'

कहने लगी, अन्त-बुद्धि का शास्त्र भी गुण-गान करते हैं राम। तब श्रेष्ठ बुद्धि के आने पर अन्त क्यों न हो जाय ? आज तक, 'यह भी नहीं; यह भी नहीं, इतना ही जान सकी। आज जान गयी हूं, कि तुम, सिर्फ तुम ! तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रही थी। मिल गये। अच्छा हुआ। तुम्हारे प्यार का सम्बोधन स्वीकार कर चली जाऊं, तो मुक्ति मिल जायगी। अन्यथा, लगता है कि पापों का हिसाब बोझिल हो गया है। उसे अधिक संभाल नहीं सकूंगी। जानती हूं कि मरने की बात कहूंगी तो तुम्हें दुख होगा। लेकिन इस दुख को अपनी नीला के लिए सहना। यह अन्तिम सुख दे दो। कहो 'हां'।

कहा, साफ कहो नीला, तुम्हारी बातें समझ नहीं पा रहा हूं।

वह रोती रही। कुछ शांत हुई तो बोली, अभी-अभी एक आदमी यहां से निकला है। इसने रुपये दिये थे। उस समय प्रेम का मशा था, इसलिए देने में आपत्ति नहीं हुई। आज वह खत्म हो गया है, तो मांगने में इन्हें लज्जा

नहीं। प्रस्ताव है, मुझे किसी और को बेचकर पैसे वसूल करने का। दस हजार का प्रबन्ध मैं नहीं कर सकती। आज के युग में भी यह क्रय-विक्रय होता है। एक गुलाम की तरह हो किसी को बेच दी जाऊंगी। उसने भाव-ताव भी शायद तय कर लिये हैं। इस काया का इतना अपमान शृष्टि-नियन्ता ही देख सकता है ! मैं नहीं। तुममें प्यार है, तुम्हारे आग्रह में निर्मलता है। मन की शुद्ध प्रतिध्वनि है। इसे प्राप्त कर, इसे संजोये ही चली जाऊँ, ऐसा करो राम।

मैंने अपने को और उसे संभालने की कोशिश करते हुए कहा 'नीला मरना चाहती हो ? जीने का उपाय न हो, तो यही ठीक है। मरना गुनाह नहीं, मरने की कोशिश करना अपराध है। अभी-अभी एक पुलिस इन्स्पेक्टर ने यही तो बताया था। यह मत समझना कि मैं आत्महत्या करने जा रहा था। आज तो पहली बार जीवन का मार्मिक स्पर्श प्राप्त हुआ है। जो हो, तुम जीवन का सारांश मृत्यु देखती हो; मुझे तुम पर अविश्वास नहीं। मैं तुम्हारा साथ दूंगा। साथ ही चलेंगे। मेरा भी आगे पीछे कोई नहीं। गत-जीवन के इतिहास के प्रति प्रलोभनीय दृष्टि डाल सकूँ, ऐसा कुछ भी नहीं। नया जन्म यदि होता हो, तो इस जन्म की अतृप्त इच्छाओं के बल पर तुम्हें हमेशा के लिए पा लूंगा।'

नीला ने कोई जवाब नहीं दिया। वह रोती रही। उसके आंचल में दबा हुआ मैं सांस नहीं ले पा रहा था। मरने की कठिनाई ऐसी ही होती है, यह जानता था। फिर भी, जब नीला की सिसकी मुझे स्पष्ट सुनायी दी, तो मैंने भर्राए हुए स्वर में कहा, 'नीला अभी तक जिन्दा हूँ, सांस लेने के लिए हवा आ रही है।'

माथे पर पसीना जरूर आ गया था, लेकिन विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि मरने का डर मेरे किसी भी रोएं से प्रकट नहीं हो सकता था।

मुझे छोड़कर, मेरी ओर देखती हुई, वह फिर सबक पढ़ी और गोद में मुंह छिपा कर निश्चेष्ट होकर गिर पड़ी। मैंने उठाया नहीं। सोचा, दम घुटने से मौत सम्भव तो है, लेकिन सरल नहीं।

मेरी आंखों में भी बरबस आंसू छलक आये।

एक रो रहा था आत्म-ग्लानि से; और दूसरा रो रहा था सौभाग्य के इस वक्र कोण पर, जिसके स्थायित्व पर विश्वास करने का कोई कारण नहीं।

उस दिन इस जीवन की कथा वहीं समाप्त हो गयी होती, तो भावी दुःखद अन्त भुगतना न पड़ता !

अस्तु । मरने का प्रोग्राम किसी न किसी प्रत्यक्ष, अथवा अप्रत्यक्ष कारण से डिसमिस हो गया । वह बेहोश पड़ी रही । होश में आयी, तो पहला प्रश्न यही पूछा, तुम कहीं गये तो नहीं, राम !

-नहीं । यहीं हूँ ।

-कहीं जाना मत । मुझे डर लगता है ।

-नहीं जाऊंगा ।

-मैं जीऊंगी, राम ।

-मैं तुम्हारे साथ हूँ, नीला ।

-सिर फटा जा रहा है, जरा दबा दो तो भाई !

दिन भर बैठा उसकी सेवा करता रहा ।

पांच :

नीला और मेरे बीच व्यवधान की जो दीवारें थीं, वे धीरे-धीरे टूटती जा रही हैं । लगता है कि जीत मेरी ही है, लेकिन नीला की पराजय के सम्मुख वह गौरवशाली नहीं बन पायी ।

कुछ स्वस्थ हुई, भावावेग समाप्त हुआ तो मैंने धीरे से पूछा, 'अब क्या करें ?'

वह चुपचाप मेरी ओर देखती रही ।

-तुम थक गयी हो । चाय बना दूं !

वह सीधी लेटी हुई थी । मैं पास ही बैठा था । मेरी ओर करवट बदल कर उसने कहा, 'रहने दो । तुम इसी तरह पास बैठे रहो ।'

-अच्छा तो दूध ही पी लो । पैसे हैं ? ले आऊं ?

तकिये के नीचे से टटोल कर उसने दस रुपये का एक नोट निकाला। नोट को देखती रही, धीरे से बोली, दूध के लिए तो पैसे नहीं हैं राम। ये रुपये हैं; पर इनसे लाया हुआ दूध ताकत दे सकेगा, यह छल ही है। इसे फाड़ कर फेंक दे !

मैं कुछ विचलित हुआ। बोला, फाड़कर फेंक देने से क्या होगा, इसे किसी गरीब को न दे दूँ ?

—नहीं। नहीं, राम। इन रुपयों को देकर पुण्य की आशा मत करना। अपवित्र दान से दानी का पाप ही लगेगा। इसे अपवित्र मान रही हूँ, तो इस धिनौने दान की बात नहीं करूँगी।

सहज भाव से मैंने उसके आदेश का पालन किया। नोट फाड़ कर फेंक दिया।

एक बात समझ में आयी, मुझे दया के प्रति क्रोध है, नीला को अहंकार के प्रति क्षोभ। आवरणों से सम्भवतः नीला परिचित है, आज तक उन्हें भुलावा देकर, मान्यता देती आयी थी। अब उन सबको फाड़ डालने के लिए प्रस्तुत है। लेकिन आगे अहंकार-विहीन नीला कैसी होगी, यह कल्पना नहीं कर सका।

फिर भी सोचता हूँ, जिस दया के प्रति मेरे मन में संचित घृणा है, वह नीला की छांह में स्वस्थता प्राप्त कर लेगी।

नीला की सेवा करने के लिए पैसे चाहिए। उसके पास नहीं हैं। और मेरे पास ? सवाल ही व्यर्थ है।

याद आया, कल जो पुलिस-इन्स्पेक्टर मिला था, वह अपनी तस्वीर बनवाना चाहता था। बनाऊँगा, तो कुछ पैसे ले सकूँगा। नीला से कहा, 'ठहरो नीला। मैं अभी आया। कुछ न कुछ इन्तजाम करके ही आऊँगा। यह मत समझना, कि गरीब राम पैसा पा नहीं सकता। आज पहली बार तुम्हारे लिए ही कमाऊँगा। गुस्-दक्षिणा दिये बिना दीक्षा सम्पूर्ण नहीं होती।

नीला मुसकरायी। निहाल-सी पड़ी रही।

सुबह की क्लॉस के तमाम विद्यार्थी बाहर खड़े गप-शप कर रहे थे। केन्टीन में अच्छी-खासी भीड़ थी। मैं इनमें वैसे भी शामिल नहीं हो पाता और आज तो उस पुलिस इन्स्पेक्टर की प्रतीक्षा कर रहा था।

दरवाजे के पास चुपचाप खड़ा मैं सड़क की ओर देख रहा था ।

पास ही एक और लड़की किसी की प्रतीक्षा कर रही थी ।

समय हो गया । लेकिन हम दोनों वहीं खड़े रहे ।

पुलिस इन्स्पेक्टर नहीं आया । मैं निराश होता जा रहा था । देखा, उपस्थित लड़की जिसकी प्रतीक्षा कर रही है, वह भी सम्भवतः नहीं आया । हम दोनों की निगाहें जब कभी आपस में मिल जातीं, तो अनजाना सवाल आंखों ही आंखों में तैर जाता—‘तुम किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो?’ प्रत्युत्तर में खयमेव नजरें झुक जातीं ।

देर होती जा रही थी, लेकिन फिर भी विश्वास था कि इन्स्पेक्टर महोदय आयेंगे । लेकिन वह सम्भवतः बिल्कुल निराश हो गयी ।

उसके बारे में याद करने लगा, ‘कौन है?’ स्मृति में इतना ही समा सका, कि मेरे साथ ही पढ़ती है । नाम नहीं जानता । जानने की अभद्रता कभी की भी नहीं !

अन्त यों हुआ कि वह मेरे पास आयी । कहा, आप फोर्थ-ईयर में ही हैं न ? आज क्लास में नहीं जा रहे हैं ?

—क्लास में जाने से पहले किसी से मिलना जरूरी है । उसी का इन्तजार कर रहा हूँ । आप भी फोर्थ में ही हैं ?

‘—देखिये । बात यह है ।’ संकोच सहित उसने कहा ‘मेरी बहन है सोना, आप उसे जानते हैं ?’

—नहीं ।

—एक काम कीजियेगा ? २४३५ बी० एम० की कार यहाँ आयेगी । यह पर्स उसे दे दीजियेगा । मैं क्लास में जाती हूँ ।

—और न आयीं तो ?

—तो, मैं आपसे ले लूंगी ।

—लेकिन आप अनजाने आदमी पर रुपये पैसों का इतना भरोसा कैसे कर रही हैं ?

—औरतें इस तरह का भरोसा करके भी नुकसान में नहीं रहतीं, यह जानती हूँ, ।’ उसने हँस कर कहा । उसकी हँसी के साथ मैंने देखा कि वह बहुत सुन्दर है ।

सेवा करूंगा, यह आश्वासन देकर, पर्स मैंने ले लिया। हंस कर ही कहा, जिनको यह पर्स देना है, उनसे अधिक मुझे इसकी जरूरत हो सकती है; और तब ये रुपये मैं खर्च भी कर सकता हूँ। मैं तो, खैर, आपकी सेवा कर ही दूंगा। लेकिन किसी गरीब को इतने रुपये देकर, फिर कभी उससे ईमानदारी की अपेक्षा करके अपना अज्ञान मत प्रकट कीजियेगा।

—अधिक नहीं हैं। सिर्फ दस—एक रुपये हैं। आप दे सकें, तो रख लीजिये नहीं तो लौटा दीजिये। मैं खड़ी-खड़ी थक गयी हूँ।

सचमुच मेरी नीयत साफ नहीं थी और न उसके लिए लज्जा ही थी कहा, 'अच्छी बात है।' और पर्स रख लिया। वह चली गयी।

समय गुजरता गया। मैं अब एक के बजाय दो महात्माओं की प्रतीक्षा करता वहीं खड़ा रहा।

लगभग आध घण्टे बाद एक कार आयी। नम्बर मिलाये। वही थी। खिड़की से झाँक कर पूछा, 'मिस सोना आप ही हैं ?'

—यस।

—आप से काम है। आपकी बहन यहाँ प्रतीक्षा कर रही थीं। वह तुरन्त नीचे उतर आयी।

मैंने कहा, 'आपको देने के लिए वे यह पर्स दे गयीं हैं।' कह कर भी पर्स मैंने उनके हाथ में नहीं दिया। कहा 'इसमें 'सिर्फ' दस बीस रुपये हैं। बताइये तो, रुपये पैसे के मामले में, अनजाने आदमी पर भरोसा करके उन्होंने अच्छा नहीं किया न ?'

वे चुप रहीं।

'सचमुच मेरी नीयत बिल्कुल साफ हो, ऐसी बात नहीं।' मैंने उनकी ओर गौर से देखा कि वे मेरी बात सुन समझ रही हैं या नहीं ?

पूछा, आप नीला को जानती हैं ?

—मोडेल !

—हाँ वही। वह बीमार है। उसके लिए रुपये चाहिए। आप पर अनजाना विश्वास करके ही कह रहा हूँ, कि मैं उसका आत्मीय हूँ। इसलिए रुपयों की चिन्ता है। आप इसमें से कुछ दे सकती हैं ? वापस जल्दी लौटा सकूंगा, ऐसा भरोसा मत कीजियेगा। आप शायद जानती हों कि स्कूल की लाइब्रेरी की

जिल्द-साजी से मुझे मासिक सिर्फ तीस रुपये मिलते हैं। जो आपके 'सिर्फ दस रुपये' से कुछ ही अधिक होते हैं।

वह चुपचाप सुनती रही।

भावुक आदमी अधिक बोलने में समर्थ होता है। उसे अपने बारे में बहुत कुछ कहना होता है। कभी-कभी वह सीमोल्लंघन भी कर जाता है। जो हो, यह देवी भली थी। बिना बोले सुनती रही। इतना ही कहा, 'पर्स मुझे दे दो। रुपये रख लो। इन रुपयों के लिए अपनी ईमानदारी मत बेचना।

इससे पहले कि मैं कोई जवाब दूं, पुलिस इन्स्पेक्टर महोदय आ गये। मैंने पर्स और रुपये दोनों उन्हें लौटा दिये। इन्स्पेक्टर साहब को नमस्कार किया। बताया कि सुबह से उन्हीं का इन्तजार कर रहा हूँ।

बड़े तपाक से मिले। मेरे कंधे पर हाथ रख कर, उस देवी के साथ बातचीत करते देख कर मुसकराये भी।

—'बस अब मुझे मजदूरी मिल जायगी।' मैंने कहा। सोना को नमस्कार कर, बिना यह देखे कि उसके चेहरे पर इस अजीब और व्यर्थ सी, घटना का क्या प्रभाव पड़ा, मैं इन्स्पेक्टर साहब के साथ चल दिया।

उन्होंने अपना नाम बताया, श्री जोगलेकर। लम्बे-चौड़े, कड़ावर महाराष्ट्रीय जवान थे। चेहरे से रोब टपकता था। साथ चल रहा था, तो कड़्यों की निगाहें बरबस मेरी ओर उठ जाती थीं। लगता था, जैसे किसी अपराधी को लिए जा रहे हों। रास्ते चलते उन्होंने सिगरेट सुलगायी। मेरी ओर केस बढ़ा कर बड़े अन्दाज से कहा, 'शौक फर्माइये।'।

—धन्यवाद। पीता नहीं हूँ।

—कुछ पिये बिना कोई आर्टिस्ट, 'आर्टिस्ट' हो ही नहीं सकता। अभी तक बच्चे हो। थोड़े दिनों बाद तो कुछ न कुछ पीना ही होगा।

उन कलाकारों की जीवनियां याद आयीं, जो नशे में खोये बिना, अपने को भुलाये बिना, अपने 'सुप्रीम', अपने उद्घात को पा ही नहीं सके। हंस कर इतना ही कहा, 'अभी वहां तक पहुंचने में बड़ी देर है।'।

वे धुआं उड़ाते रहे। लगा कि इस में उन्हें बड़ा आनन्द आ रहा है। रास्ते चलते एक रेस्टोरेंट के मालिक से उन्होंने धीरे से घुसपुस की, हंस कर हाथ हिला कर किसी खास बात के लिए सहमति प्रकट करते हुए वे मेरे साथ चले आये।

घर स्कूल से दूर नहीं था। पहले जहां पेइंग-गेस्ट के रूप में रहता था, उससे दो बिल्डिंग्स छोड़ कर ही उनका मकान था। शानदार सजा हुआ फ्लेट प्रवेश करते ही मालूम होता था कि यहां कोई दिल और जेब से रईस आदमी रहता है। अनुमान लगाया, या तो घर के सम्पन्न हैं; अथवा तनख्वाह में मोटी रकम प्राप्त कर लेते हैं। दोनों अवस्थाओं में पैसे की कीमत उनकी निगाहों में अधिक नहीं। उछाल कर उसकी चमक और दमक दोनों देखने में समर्थ। सोचा, कोई बड़ी बात नहीं, यदि चार-पांच रुपये बिना किसी हिचकिचाहट के दे दें।

सोफे पर बैठ गया। उन्होंने नौकर को बुलाकर चाय लाने का आदेश दिया। पहली बार इतनी आबभगत हो रही थी। सो वहां बैठने में बड़ी तृप्ति मिली। भूल-सा गया कि यह सब जिसके लिए कर रहा हूं, अथवा जिसके भाग्य-नक्षत्रों के बल पर यह जो सम्मान मिल रहा है, वह स्वयं बिस्तर पर पड़ी, मेरा इन्तजार कर रही होगी।

याद आया तो पूछा, साहब, स्केच बनाना शुरू कर दूं ?

—इतनी जल्दी नहीं है। चाय आने दो। खाना खाओगे ?

जी किया कि कह दूं कि जो खाना खिलाना चाहते हैं, वह दे दें। अब मुझे सिर्फ अपना ही इन्तजाम नहीं करना है; बल्कि आज किसी और के लिए भी जिम्मेवार हूं। आज तक नीला का तिरस्कार ही करता रहा हूं, कि वह गलत रास्ते पर है। उसे सही रास्ता बताने और वहां उपस्थित होनेवाली कठिनाइयों में साथ भी दूंगा। एकाएक घर-गृहस्थी की जो जिम्मेवारी आ गयी थी; मैंने उसका स्वागत ही किया है। इसीलिए तो खाने की बात आते ही नीला के बारे में सोचने लगा। उसका भी तो इन्तजाम करना है। लेकिन यह सब उन्हें कह नहीं सका। न निमंत्रण ही स्वीकार कर सका।

तभी उनकी श्रीमती ड्राइंग रूम में आ गयीं। उन्हें देखते ही उन्होंने हंस कर इतना ही कहा, 'है न ?'

स्वीकृति में श्रीमती की प्रसन्नता प्रगट हो गयी।

मैं आदर के साथ खड़ा हो गया।

बोलीं, बैठो।

बैठ गया।

क्या कहूं ? यह नहीं समझ पाया तो कागज पसार दिये। पूछा बनाऊं ?

-अच्छा ।

वे स्थिर होकर सामने बैठ गये ।

घंटे भर मैं कागज पर पेंसिल दौड़ाता रहा ।

बीच में चाय आयी; उन्होंने इशारे से मना कर दिया । ताकि व्यवधान, डिस्टर्बेन्स न हो । नौकर वापस चला गया । श्रीमती पास ही बैठी अपलक नेत्रों से मेरी ओर देखती रहीं ।

रिटचिंग-फिनिशिंग से फारिग हुआ तो चाय आयी । कुछ बिस्किट भी थे । खा गया । चाय पी । भूख मर-सी गयी । संतोष हुआ ।

श्री जोगलेकर ने स्केच देखा । खुश हुए । श्रीमती ने भी देखा, उन्होंने नौकर को बुला कर उसे दिखाया । फिर पूछा, 'मेरा भी स्केच बना दोगे ?'

-बना दूंगा ।

-कब बनाओगे ?

-आज नहीं । फिर, आप कहें तब ।

उन्होंने अधिक बहस नहीं की ।

कहा, कल आऊंगा ।

पता पूछा तो नीला के घर का पता बता दिया । उन्होंने अपनी डायरी में नोट कर लिया ।

चलने लगा तो अत्यन्त झिझक के साथ मैंने दो-तीन रुपये मांगे ।

भले आदमी थे । पांच रुपये दे दिये ।

कला के बल पर यह पहली आमदनी थी ।

रुपये पास थे, सो भूख लगी । नीला के पास तुरन्त पहुंचने के लिए उतावल भी हुई । रास्ते में मोसम्बियां ली । दूध लिया । बस में बैठकर घर पहुंचा ।

नीला स्नान कर चुकी थी । बाल सुखा रही थी । मुझे देखा तो माथे पर पल्ला ओढ़ लिया ।

मैंने सारा सामान टेबल पर रख दिया । पुस्तकें उठाकर आलमारी में रखीं । मोसम्बियों का रस निकालने बैठा । वह स्टोव जलाने लगी, तो मैंने गना कर दिया । खुद ने जलाया । वह पास बैठी देखती रही । गर्म दूध प्याले में डालकर उसके सामने रख कर आदेश दिया, पीयो ।

दूध पीकर जैसे उसे बड़ा संतोष मिला हो। बोली, राम मेरे पास बना रह। तू कहेगा वैसे ही कहूंगी। जीऊंगी, और तू कहेगा वैसे ही जीऊंगी।

‘जीना तुम अपने तरीके से’ मैंने कहा, ‘तुम्हें जीने के तरीके समझाने की काबिलियत मुझमें नहीं है। तुम पर आदेश चलाया कहूँ, ऐसी स्पष्टी नहीं। अच्छा, अब जाओ, लेट जाओ। अच्छी तरह से नींद ले लो। सब ठीक हो जायगा।’

लेट गयी, तो मैं पैताने जाकर बैठ गया। कहा, ‘नीला जिन्दगी भर परायी दया और कृपा ही पाता रहा। विवश था। तुम भी कुछ-कुछ ऐसी ही जटिल ग्रंथियों से दुखी हो। तुम उसे अहंकार कहती हो। इसे स्पष्ट रूप से मैं जानता नहीं हूँ। लेकिन यही दो मूल-पीड़ाएँ ऐसी हैं कि हमारी कड़ी आपस में जुड़ी हुई है। तुमसे यह जान सका हूँ कि अहंकार गलत है, और दान-दया भी। असली सत्ता को मैं पहचानता हूँ, यह तो नहीं कहता। लेकिन जो मिथ्या है, उससे सजग रहने में तुम मेरी मदद करना।’

नीला अपने हाथ में मेरा हाथ लिये, खेलती रही।

मैंने कहा, नीला, जिसका आज स्केच बना आया हूँ, उस इन्स्पेक्टर की पत्नी ने अपना स्केच बनवाना चाहा है। वह भी पांच रुपये देगी। वे कोई ऊँचे दर्जे के अफसर हैं। जान-पहचान, बहुत होगी ही। कहूँगा, तो कृपा करके कोई नौकरी लगवा देंगे। सौ-रुपये तक की बंधी आमदनी हो जाय, तो तुम्हें फिर किसी बात की फिक्र करने की जरूरत नहीं। सच कहता हूँ, नीला, स्कूल में तुम्हारा मोडेल के रूप में जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। तुम मेरी ही मोडेल बनी रहना। मैं सारे आवरणों के बावजूद भी पहचान लूँगा कि मौलिक क्या है? यह सिर्फ प्रार्थना की जिद्द ही नहीं, बल्कि वास्तविक जीवन की शर्तें हैं। इसे तो मानना ही होगा। यदि ऐसा तुम ठीक समझती हो, तो ऐसा ही करो। यह तुम्हारे अधिकार की मान्यता है। वह अधिकार नहीं, जिसकी कोई मांग करे, अथवा कर सके, बल्कि वह जो, जोर देकर दिया जा सकता है।

नीला ने बिलकुल भोली बन कर अन्तस की बात कही, “तेरे ‘चरण-रज’ चित्र में एक संशोधन कर दे। चरण दो ही नहीं होते, उनके साथ दो और होने चाहिए। अन्यथा उनकी क्रिया महत्वपूर्ण और आदर्श नहीं हो सकेगी।

“ऐसा लगे कि दो व्यक्ति साथ-साथ चले जा रहे हैं। पद चिह्नों की कोई पूजा करेगा या नहीं, इसकी चिन्ता करने की, आगे बढ़नेवालों को कोई परवाह नहीं।”

उत्साह और उल्लास से मेरी आंखें चमकने लगीं। कहा, ऐसा ही होगा। केवल कल्पना और रेखाओं द्वारा ही नहीं; जीवन में भी। हम साथ ही रहेंगे, साथ ही जीयेंगे, साथ ही मरेंगे।

कुछ रुक कर कहा, “आज प्रतिज्ञा करता हूँ नीला, कि मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहूंगा। भीष्म-पितामह की तरह किसी को राज्य देने मात्र के लिए नहीं, बल्कि अपनी वर्तमान स्थिति की सुरक्षा के लिए। संसार की कोई शक्ति इस राम को नहीं झुका सकेगी। कोई नहीं। याद है, नीला तुम्हें, एक दिन राम ने समुद्र को ललकार दिया था कि वह उसका रास्ता छोड़ दे, और समुद्र पीछे हट गया था।

“यह नहीं कहता नीला, कि जो भगवान करता है, वही होता है। कहता है यह, कि आदमी जो चाहता है, वह होता है। लेकिन आदमी भी कितना दयनीय है, वह चाहता ही तो नहीं; मजबूती के साथ, जब उसने जिस चीज की मांग की है, उसका मूल्य दिया है, उसे मिला है।”

नीला के होठों पर मुसकराहट फैल गयी। बोली, जो मैं तुम्हारे लिए अच्छी सी दुलहन ला दूं तो ?

—ऐसा नहीं कर सकोगी नीला। दुलहन और दुल्हे का रिश्ता चिर-पुरातन है, चिर सनातन; ऐसा सुना है। पर इससे भी कहीं ऊंचे दर्जे का, इससे भी कहीं पवित्र, इससे भी आवश्यक एक सम्बन्ध होता है, जो तुम्हारी छांह के नीचे बिताया जा सकता है। जिसमें युग सिर्फ पांच मिनट का होता है। जहां एकात्मकता इतनी प्रबल हो, जीवन की सीमाएं इतनी स्पष्ट हों एक दूसरे की पूरकता इतनी अनिवार्य हो, वहां ब्याह रचाने, दोनों को विभक्त कर भोगने की फुर्सत कहां होगी ?

“फिर भी अंतिम सांस में वह जो संतोष प्राप्त कर सकेगा, उसे ब्रह्मा समस्त श्रृष्टि का निर्माण और विध्वंस करके भी नहीं प्राप्त कर सकता। इस प्रतिज्ञा की कभी हंसी मत उड़ाना। न इस पर बहस ही करना। क्योंकि यहां बहस हार जाती है। यह उससे परे की चीज है। बल्कि कभी विचलित होऊँ, तो सावधान करना।

“अब फिर पछताती हूँ राम । तुम्हें समझना सरल नहीं है। अब जिन्दगी भर तुम्हें ही बूझना होगा।” उसने हंसते हुए कहा, “अभी तो भविष्य का विधान बना रहे हो। हर एक चीज अपनी जिद्द से ही तय करोगे, तो मैं इस विधान पर ही संदेह करने लगूंगी।”

—तो ?

—सोचो तो, जो मैं ब्याह रचा हूँ ?

एकाएक इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका। रुक कर कहा, “डराओं नहीं नीला। तुम जो करती हो, करोगी, उसी से मेरा जीवन बनेगा, बिगड़ेगा, यह तुमसे किसने कहा ? यदि कभी ऐसी बात हुई भी, तो मुझे दुखी होना होगा, ऐसा तो नहीं सोचता। इसलिए कि जहाँ प्रलोभनीय ऐसा कुछ हो ही नहीं, वहाँ दूसरों की प्राप्ति पर असंतोष हो, यह तो कोई बात नहीं हुई। फिर भी, यदि मेरे सामने कभी ऐसा प्रलोभन आया तो...तो...तो भी अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं करूँगा। तुम जितनी, और जैसी प्राप्त हो गयी हो, वहाँ संतोष के लिए पर्याप्त होगा। इससे अधिक भविष्य की कल्पना मुझसे नहीं होती।

—मैं तो कर सकती हूँ।

—बहस मत करो नीला। जीवन को विशिष्ट ढंग से बिताने का आज संकल्प लेता हूँ। मैंने मन ही मन कहा—‘आशीर्वाद दो कि इस प्रथम निश्चय में असफल न होऊँ।’

छः :

भीष्म—पितामह से विवाह करने के लिए कई राजकुमारियाँ प्रस्तुत थीं; इसलिए भी उनके अखण्ड-ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा आज भी जयजयकार करती हुई फहरा रही है। लेकिन मुझसे विवाह करने के लिए कौन राजी है ? फिर मेरी यह प्रतिज्ञा क्या ह्रास्यजनक नहीं है ?

लेकिन, जिसके पास कुछ हो, वह उसका त्याग करे, उससे भी अधिक बड़ा वह है, जिसके पास कुछ भी न हो, और वह त्याग दे।

बचपन में कहीं सुनी, एक कहानी याद है, किसी ने अपनी माँ के श्राद्ध के सिलसिले में एक ब्राह्मण को न्योता दिया और दक्षिणा में अपने वजन का सोना उसके सामने रख कर कहा, 'सुन ब्राह्मण, मेरे जैसा दानी तुझे नहीं मिलेगा, जो इतना धन, श्राद्ध की दक्षिणा में दे दे।' इस पर ब्राह्मण देवता ने उस सोने की ढेरी को लात मारते हुए कहा, 'तो सुनो यजमान, तुम्हें भी ऐसा ब्राह्मण नहीं मिलेगा, जो इस विशाल ढेरी को लात मारकर, इसे तुच्छ समझ कर, चला जाय।'।

अपने को उस ब्राह्मण की जगह रख कर ही तो मैं नीला के सामने अखण्ड-ब्रह्मचर्य की बात कह गया हूँ। यदि कभी किसी ने इतनी बड़ी कृपा की, कि विश्व की अद्वितीय सुन्दरी को मेरे सामने प्रस्तुत करके कहा, 'सुन रे राम, यह है तेरा परम-सौभाग्य। ले।'।

तब अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, हंसकर, दृढ़ता के साथ उसे ठुकराते हुए कहूंगा, 'सुनो, तुम्हारी इस महती कृपा को भी मैं अत्यन्त तुच्छ समझता हूँ।'।

मगर अपने सामने झूठ भी कैसे बोलूँ? अपनी प्रतिज्ञा को इस रूप में पेश करने का एक और कारण था, जिसे आज समझ पाया हूँ —उसके शारीरिक विलास का तिरस्कार। अपनी अडिगता की चोट।

स्त्री और पुरुष का तो सनातन रिश्ता है। संदेह नहीं, नीला स्त्री है, मैं पुरुष। नीला के सामने स्वयं बिन्दु मात्र हूँ, इसलिए विराट के सम्मुख स्थिर नहीं। स्त्री के सम्मुख पुरुष तुच्छ रहे तो वह उसका अधिकारी नहीं, उसका कृपाकांक्षी है। जो कृपाकांक्षी है, उससे सनातन रिश्ते का कोई सम्बन्ध नहीं।

जिस व्यक्ति ने जीवन के लम्बे असें तक कुछ भी प्राप्त नहीं किया हो, वह किस पूंजी के बल पर इतनी बड़ी धरोहर को संभालने की कल्पना करे?

इसलिए कृतज्ञता-पूर्ण अनुराग के अतिरिक्त अधिकृत प्रेम का दावा मैं कभी कर नहीं सका। मेरी इस कृतज्ञता को उसने स्वीकार कर लिया, मैं इसी में अपने को अन्त तक सार्थक समझता रहा।

लगा कि जैसे अखण्ड-ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा से अपनी विशिष्टता की जो घोषणा कर गया हूँ, उससे कुछ जिम्मेवारियाँ अनुभव हो रही हैं;—जैसे अपनी ही नजरों में उछल कर फूल गया हूँ।

दूसरे दिन पुलिस इन्स्पेक्टर श्री अनन्तराम जोगलेकर के यहाँ, उनकी पत्नी का स्केच बनाने पहुँच गया। सोचा था, मौका मिला, तो नौकरी की बात भी कहेंगा।

जोगलेकर महाशय मौजूद नहीं थे। उनकी पत्नी ने बड़े प्यार से स्वागत किया।

श्रीमती जोगलेकर तीस-पैंतीस वर्ष से बड़ी नहीं होंगी। स्वस्थ, सुन्दर, तेजस्वी। मेरा नाम जानती थीं। मैं उन्हें अन्नपूर्णा कहता था—यही कहेंगा भी। 'आओ' कह कर उन्होंने अभ्यर्थना की। 'बैठो' कहा, तो बैठ गया।

पूछा, राम तुमने अपना भी स्केच कभी बनाया है ?

सिर हिला कर बताया, नहीं तो।

—कहूँ, तो बना दोगे ?

—क्या करेंगी ?

—यह तो मैं सोचूँगी। तुम बना दो।

—बना दूँगा। आज तो आपका स्केच बनाने आया हूँ। बना दूँ तो कुछ दक्षिणा ही देंगी। वही मुझे चाहिए भी।

—तुम्हारे स्केच के लिए भी कुछ दूँगी।

—वह भी बना दूँगा।

वे उठीं। अन्दर से दस रुपये का नोट ले आयीं। देकर बोलीं, कल तुम्हारा स्केच भी मिल जाना चाहिए। यह तुम्हारा मेहनताना नहीं दे रही हूँ। अभी इतना ही देती हूँ। रख लो। बाद में फिर जरूरत हो, तो माँग ले जाना। पैसे के लिए तकलीफ मत पाना।

संकोच और कृतज्ञता से झुक-सा गया। विशालता का बोध अपनी हीनता से ही तो होता है। कहा, "स्केच की, और वह भी मेरे स्केच की, कीमत इतनी नहीं होती। प्रत्येक चीज बेचने लगूँगा तो, आपके सामने खड़ा भी कैसे हो सकूँगा?"

पता नहीं, मेरी इस बात में नाराज होने की कौनसी बात थी ? एकाएक वे फफक पड़ीं। आँचल में मुँह छिपा कर अन्दर चली गयीं। मैं घबरा-सा गया। अनजाने में ही कहीं किसी का अपमान न हो गया हो ! अपना-अपना शौक है। मुझे ऐसी बातें करने की क्या जरूरत थी ? मुझे तो आर्डर देने वाले का कहा मात्र मानना चाहिए। जो दे, उसे मंजूर कर लेना चाहिए।

तभी वे वापस आ गयीं। उनके हाथ में दो-तीन रकबियां थीं। भुने हुए आलू, कुछ पकोड़े, बिस्किट। टेबल पर रखकर आज्ञा के स्वर में बोलीं, खालो। खाने बैठा। जरा-सा भी उज्र न कर सका।

भरीए हुए स्वर में बोलीं, अच्छा राम, मेरा स्केच तो बना दोगे ?

बड़े आदमियों से पाला नहीं पड़ा था। विवाद के किस सारांश पर, आज्ञा के किस अंश पर अमल करना चाहिए, यह उस समय नहीं जानता था। हाथ में लिया हुआ आलू वापस तश्तरी में रख कर उतावली के साथ कह गया, अभी बनाता हूं।

जेब से पेन्सिल निकाल कर बैठ गया।

वे बोलीं, 'अरे, पहले खा तो लो।' फिर पूछा, 'तुम रोज खाना कहाँ खाते हो ?'

-नीला के यहाँ।

-यह कौन है ?

-जीजी हैं। बड़ी बहन।

-और मां-बाप कहाँ हैं ?

-कुछ पीड़ा-सी हुई। निगलता हुआ कौर मुंह में अड़-सा गया। पानी पीकर गले को साफ करके कहा, सो तो नहीं जानता।

-तो भी, कहाँ के हो तुम ?

-यह भी नहीं मालूम।

-ब्राह्मण हो ?

-शायद नहीं। ठीक से नहीं जानता।

-इतना लुकाने-छिपाने की बात तो नहीं। मैं तुमसे बड़ी हूँ। मुझे बता दोगे, तो नुकसान नहीं होगा।

-नुकसान की बात नहीं। इससे अधिक अपने बारे में कुछ जानता ही नहीं। अनाथालय में पला हूँ। अपने बारे में वहाँ इससे अधिक नहीं जाना जा सकता, जो कह चुका हूँ।

लगा कि यह जवाब उनके लिए ठीक नहीं था। इसके अतिरिक्त बता सकूँ, ऐसी कोई बात थी भी नहीं।

उन्होंने पूछा, यह नीला भी अनाथ है ?

-शायद। पर ठीक से नहीं जानता।

—वह भी तुम्हारी तरह अकेली है ?

—हाँ, अकेली, बिल्कुल अकेली !

—कुछ काम करती है ?

—अब नहीं करेगी । अब तक करती थी । मैं कमाने जो लगा हूँ । एक बात बताइये, आप मुझे कोई नौकरी दिला सकती हैं ? मैं अंग्रेजी जानता हूँ, हिन्दी भी । ड्राइंग तो आप देख ही चुकी हैं । किसी भी तरह का काम हो, महीने के सौ रुपये मिल जायं, तो हम दोनों के लिए बहुत होंगे ।

—मैं उनसे कहूँगी । तुम बता रहे थे न, तुम्हारी बहन कहीं काम करती है । उसका क्या हुआ ?

—स्कूल में न्यूड-मोडेल थी । यह मुझे अच्छा नहीं लगता । सो चाहता हूँ कि वह इसे छोड़ दे । मेरा इन्तजाम हो जाय, तो वह छोड़ देगी ।

—न्यूड मोडेल ? हिन्दुस्तान में भी ऐसा होता है ?

—होना चाहिए । इसलिए होता तो है ही ।

—छिः छिः सारे लड़कों के सामने एक औरत इस तरह नंगी खड़ी होने से पहले लाज के मारे मर नहीं जाती ?

—उस समय तो नहीं । इसके पहले और बाद में मरने के कई मौके जरूर आ जाते हैं ।

—उसी के साथ तुम रहते हो ?

—हाँ ।

—ऐसी लड़कियों के साथ रहना अच्छा नहीं राम ! पता नहीं, और भी वे कैसे-कैसे गंदे काम करती हों ?

—गंदे ? उन्हें आप भी गंदे कहती हैं ! मैं भी ऐसा ही कहता हूँ । लेकिन वह कहती है, अब वह यह सब पैसे के लिए नहीं करेगी । कोई वेश्या इसीलिए तो बुरी मानी जाती है कि वह पैसे के लिए अपने शरीर को बेचती है ! जब मैं कमाने लग जाऊँगा तो पैसे की कमी नहीं रहेगी । फिर वह ऐसा काम क्यों करेगी ! कोई स्त्री अपनी इच्छा से वेश्या थोड़े ही होती है !

—राम । वेश्या कैसे होती है, सो मुझे मालूम नहीं । मालूम करना भी नहीं है । इतना ही कहती हूँ कि तुम्हारे जैसा आर्टिस्ट मेहनत करके कमाये, और वह आवारा लड़की मौज करती फिरे, यह अच्छी बात नहीं । मेरी मानो, यहाँ आ जाओ ।

नीला के प्रति जो तिरस्कार वे व्यक्त कर चुकी हैं, उसके बावजूद उनसे किसी प्रकार की सहायता की उम्मीद नहीं की जा सकती। कृपा की समस्त कृपा तिरोहित हो गयी। उठ खड़ा हुआ। कहा, आपके प्रति कृतज्ञता की सीमा नहीं है; लेकिन आप नीला का अपमान करें, वह सह नहीं सकता। मेरे नमस्कार स्वीकार करें। चलता हूँ।

कागज वहीं छोड़, उठकर चलने को हुआ, तो उन्होंने अभीरता से रोक लिया, कहा, 'ऐसे मत जाओ। यहाँ बैठो।'

रुक गया।

-मेरे साथ आओ।

गया। एक आलमारी के पास जाकर वे खड़ी हो गई। दरवाजा खोल कर उसमें से एक अलबम निकाला। चार-पाँच वर्षीय एक बालक के अगणित फोटोग्राफ्स लगे हुए थे। ऐसा लगा कि मेरा चेहरा उस बालक से मिलता-जुलता-सा है। मैंने सिर उठाकर उनकी ओर देखा। वे मेरी ओर एकटक देख रही थीं। सजल नयन।

मैं सोफे पर धप से बैठ गया। एक भीषण विचार माथे में तूफान की तरह सनसनाने लगा, मैं इन्ही का पुत्र तो नहीं हूँ? ऐसा होता है, कि अनैतिक रूप से उत्पन्न बालकों को अनाथ कह कर छोड़ दिया जाता है। कथन स्वर में उनका हाथ पकड़ कर रोते हुए कहा, माँ...तुम...माँ!

एलबम मेरे हाथ से लेते हुए उन्होंने कहा, हाँ राम, यह मेरा लड़का था। १२ साल से भी अधिक हो गये, वह चला गया। देखो न, तुम्हारा चेहरा उससे कितना मिलता है?

देख गया। भाप उड़ गयी। विचार तिरोहित हो गये। जान गया, मैं उनका लड़का नहीं हूँ। जो था, वह अब इस संसार में नहीं है; जो है, उसे बे टटोल रही हैं। प्रेम के इस अतिरिक्त कारण को जान कर कृपा शेष हो गयी।

उन्होंने कहा, इसके बाद आज तक कोई शिशु इस घर में नहीं आया। आज तुम आये हो, केवल तुम! और तुम भी इस तरह अपमान करके जा रहे हो।

समझा। कहा, माँ, जो मेरा चेहरा ऐसा नहीं होता तो!

-ऐसी बहस मत करो राम।

उन्हें जो अच्छा न लगे, वह मेरे द्वारा प्रस्तुत न हो, यह चाहता हूँ ।
 सो बहस नहीं की । चुप हो गया ।

सिसकियों के स्वर में वे कहती रहीं, 'तुम जा रहे हो, जाओ । रोऊंगी नहीं । लेकिन कुछ देर के लिए बैठ जाओ । माँ का दिल ऐसा ही पगला-सा होता है । न हो, स्केच ही बनाओ । लेकिन वादा करो, फिर आओगे ।

कहा, आऊंगा । बहस भी नहीं करूँगा । लेकिन एक बात कहूँगा, नीला का अपमान मुझसे सहा नहीं जायगा ।

इतना कह कर चुप हो गया । एक साथ इतनी घटनाएँ स्थूल रूप से माथे में चक्कर काट गयीं कि उन्हें भुलाने के लिए सोफे के पीछे माथा टेक कर मैंने आँखें मूंद लीं ।

मेरे माथे पर हाथ फेरती हुई वात्सल्य पूर्ण स्वर में उन्होंने कहा, राम तुम्हारी नीला को भी बेटी कहूँगी; मुझे उससे मिला दोगे ?

-बेटी कहने के बाद भी अपमान नहीं करने दूँगा ।

-अच्छा । प्यार तो कर सकूँगी ?

-कर सकोगी ? इसी की तो उसे जरूरत है । संसार के हर आदमी को जरूरत है । आओ, चलो मेरे साथ । तुम देखोगी तो मुग्ध हो जाओगी । ऐसी है वह । प्यार करोगी, तो वह तुम पर न्योछावर हो जायगी । पन्द्रह-बीस मिनट में ही हम घर पहुँच जायेंगे ।

जैसी थी, वैसी ही तैयार हो गयीं । चलीं । पूछा, मकान कहाँ है ?

-नजदीक ही है । मलाबार हिल ।

एच० स्ट बस में बैठकर नीला के यहाँ पहुँचे । कहाँ, अपने घर पहुँचा ।

नीला 'चरण-रज' चित्र को फ्रेम में लगा रही थी । मेरे साथ एक अन्य महिला को देखकर, उसने सारा सामान एक ओर रख दिया । स्वागत और अभ्यर्चना के लिए उठ खड़ी हुई ।

मैंने कहा, माँ हैं ये । प्रणाम करो इन्हें ।

मेरी इस धृष्टता पर एकबारगी शायद वे मुसकरायीं । नीला ने झुक कर कुल-पुत्री की तरह प्रणाम किया । उन्हें पर्लंग पर बैठने का संकेत करते ही, चहर के मैलेपन को देखकर वह शर्मा-सी गयी । मैंने नीचे रखे सैक से नयी धुली हुई चहर निकाली । बिछायी । कहा, 'बैठिए । यह है, हमारा घर !'

नीला से कहा, तुम्हें देखने के लिए आयी हैं। कल इन्होंने ही वे रुपये दिये थे। श्री जोगलेकर पुलिस में किसी बड़े ओहदे पर हैं।

फिर झुक कर उसके कान के पास जाकर धीरे से कहा, इनके मृत-पुत्र से मेरा चेहरा दू-ब-दू मिलता है।

अन्नपूर्णा से कहा, हम दोनों को शुद्ध स्नेह की जरूरत है मां ! और आपके पास है ममता का अखण्ड भंडार ! यह है नीला, मेरी बहन, इतने बड़े संसार में, इस अनाथ व्यक्ति की एक मात्र अपनी, नीला।

अन्नपूर्णा-मां ने नीला को खींचकर अपने पास बैठा लिया। नीला का आंचल खिसक आया था। उसे ठीक कर, वह चुपचाप बैठी रही। शायद उसकी आंखें छलछला आयी थीं।

बाद में उसने एक दिन कहा था, 'राम, तेरे कारण सोचती हूँ, जीवन की भिन्न जमीन पा सकूंगी।'

उस समय अन्नपूर्णा-मां ने कहा, 'नीला, इस राम को मुझे दे दे। अच्छा लड़का है। सो गोद ले लूंगी।'

तो नीला ने हंसकर कहा, 'दे तो दूंगी, पर एक शर्त है मां !' कुछ रुक कर बोली, 'इसका ब्याह कर दो। तो, तुम्हें सौंप कर अकेली रहने का दुख नहीं रहेगा।'

-उसकी फिक्र तू मत कर।

-उसी की तो फिक्र है ! कल ही न जाने कैसी अजीब सी प्रतिज्ञा इसने की है।

-क्यों राम ? जिसे एक मात्र अपनी नीला कह रहा था, उसी की बिना आज्ञा के तू प्रतिज्ञाएं कर लेता है ?

-ऐसी बात तो नहीं है। लेकिन जो कुछ करता हूँ, बस उसी से इसे विरोध होता है। मैं क्या करूं ?

-सुनू तो। कल क्या प्रतिज्ञा की थी ?

मैंने जरा तन कर, सिर ऊंचा उठाकर, दृढ़ता-पूर्वक अपनी प्रतिज्ञा डुहरा दी। कहा, इसे छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगा।

मुझे हृदय से लगा कर वे बोलीं, इतनी बड़ी प्रतिज्ञा इस उम्र में शोभा नहीं देती राम। अभी तो-तू ऐसी बात करने लायक भी नहीं हुआ।

स्नेह के इस तरल प्रवाह में मैं डूब-सा गया। गोद में मुंह छिपाये ही कहा, 'इसे कह दो मां, कि जब योग्य हो जाऊँ, तब भी मुझे चिढ़ाये नहीं।'।

प्रसंग बदला, तो नीला ने कहा, आज यहीं कुछ प्रसाद पा लीजिये।

आश्चर्य—सा हुआ; उन्होंने तुरन्त स्वीकार कर लिया।

नीला पलंग से उतरकर चौकी पर बैठकर उनके लिए खाना परोसने लगी।

सुरक्षा की दृष्टि से मैंने कहा, तुम्हारे यहाँ तो खाने की कमी नहीं है मां। इसने दो जनों का खाना पकाया होगा। मुझे भी खिला देगी, और आपको भी, मगर खुद भूखी बैठी रहेगी।

बड़ी भद्दी और अशिष्टाचार की बात कह गया था।

लेकिन अन्नपूर्णा ने कहा, ऐसा करें राम, हम तीनों अपने अपने हिस्से का खायें। तुम दोनों कुछ कम खाओगे, तो मेरा पेट भर जायगा।

नीला ने मेरी ओर अनुशासन की दृष्टि से देखा। मैंने अन्नपूर्णा से फरियाद की, देखो तो, यह कैसे घूर रही है।

नीला शर्मा गयी।

मां भी हँसने लगी।

हम सबने साथ-साथ खाना खाया। मैं बराबर देख रहा था कि कहीं नीला भूखी न रहे। लेकिन शायद ही कोई भूखा रहा होगा।

खाना खा चुकने पर अन्नपूर्णा ने नीला से कहा, मुझे इसका एक स्केच चाहिए। तुम कहोगी, तो बना देगा। तुम जब तक 'हाँ' नहीं कहोगी, मेरे कहे कुछ नहीं होगा।

—ऐसे आदमियों का भरोसा नहीं, मां। जो कह दें सो करेंगे ही; यह तो विधवा भी नहीं जनता। इसका स्केच मैं बना दूंगी।

—तुम भी आर्टिस्ट हो ?

—नहीं हूँ, तो क्या हुआ ? हो जाऊँगी।

—तुम दोनों साफ-साफ बातें नहीं कर सकते ? हमेशा पढ़ेलियाँ ही बुझाते रहते हो क्या ?

—नहीं मां, अब तक तो नहीं थीं। पर अब इसके कारण बनना ही होगा। अब तक आर्टिस्टों को ही देखा करती थी, अब तो खुद को बनना होगा। और कुछ नहीं तो आपको स्केच देने के लिए ही सही।

जाने लगीं तो न्योता दिया। कहा, एक दिन तुम दोनों आओ। पूरे दिन रहना। खाना भी वहीं खाना।

बिना मेरी राय लिये ही नीला ने स्वीकृति दे दी।

सात :

एक दिन अन्नपूर्णा के यहाँ नीला के साथ जाकर, खाना खा आया हूँ। उनका स्केच भी बना कर दे आया हूँ। मेरा स्केच, जो स्केच के बनिस्पत कार्टून ही अधिक था, नीला उन्हें दे आयी है। पाकर वे खुश हुई।

अन्नपूर्णा ने नीला से मंत्रणा कर पचास रुपये दिये। कहा, कुछ औराजनल [मौलिक] चित्र मुझे बनाने चाहिए, इन रुपयों से आवश्यक सामग्री आयेगी। जब रुपये हाथ में आ जायं, तो लौटा दें। पेंटिग्स एकत्रित हो जायं, तो प्रदर्शनी का प्रबन्ध वे करवा देंगी।

घर आने पर नीला ने जब यह प्रस्ताव रखा, तो मैं उत्साह से भर-सा गया। नीला की आज्ञा का उल्लंघन करना वैसे भी मेरे लिए सहज नहीं, और फिर, यह तो वह वरदान था, जिसकी हर कलाकार अपेक्षा करता है।

स्कूल जाना छूट गया। डिप्लोमा से आस्था उठ गयी। वैसे कला का अन्त नहीं। स्कूली-सीढ़ियों को छोड़कर, जीवन के दुर्गम मार्ग पर, संकरी पगडंडियों पर आगे बढ़, यही नीला की राय थी।

पेंटिग्स बनाने बैठा, तो समाधि लग गयी। नूतन विचार उठते। नयी भावनाएं आतीं। नीला देख कर प्रसन्न हो सके, इस शर्त को रख कर बनाता, तो अर्चना में सुगन्ध कैसे न होती? नीला चित्रों को देखकर उनकी प्रशंसा करतीं। रंग के मिश्रणों पर अपनी राय देती। विभिन्न मुद्राओं में सामने खड़ी होती। अनेक भावनाओं की रुबियां गूंथती और पेंसिल, कूंची दौड़ने

लगती, कि भावनाओं के आवेश में पद-चिह्न बन जाते। लोग इसे कला कहें, माँ अन्नपूर्णा गौरव करे, और देखे कि मुझे इससे यश मिलता है।

वाटर-कलर्स से ही सारे चित्र तैयार किये गये थे। इसलिए जब एक चित्र सूख रहा होता, तब दूसरा बनाने बैठ जाता। योगियों ने तन्मयता की की बड़ी महिमा गायी है। अनुभूत क्या है, यह अब जाना। एक महीने में ही लगभग ३२ पेंटिंग्स तैयार हो गयीं। चित्र तो आँखों में तैरते ही थे। उनकी तादाद और वजन देखकर मेरी छाती फूल उठती।

नीला कहा करती, 'राम तुम्हारे इन चित्रों की प्रदर्शनी जब होगी तो देखना, धूम मच जायगी। सारे अखबार वाले तुम्हारा फोटो छापेंगे। तुम्हारी पेंटिंग्स बिक गयी तो नौकरी की समस्या नहीं रहेगी। हम दोनों सारा हिन्दुस्तान घूमेंगे। इसी आसमान के नीचे कितना कुछ सुन्दर नहीं है, और हमने अभी तक कितना कम देखा है?'

मैं कल्पना-विभोर हो कर सोचता, संसार के रमणीय से रमणीय स्थानों पर नीला मेरे साथ होगी।

चित्र तैयार हो गये। नीला ने सबको कार्ड-बोर्ड्स पर चिपकाया। प्रेमिंग की।

प्रदर्शनी का आयोजन हो गया। नीला और मैं दोनों बैठे डेकोरेशन-सजावट-के बारे में सोच रहे थे। नीला ने अपने उसी कार्टून को, जो उसने अन्नपूर्णा को दिया था, इनलार्ज करके, बड़ा करके प्रदर्शनी के दरवाजे के सामने रखने का प्रस्ताव रखा। कहने लगी 'प्रवेश करते समय लोग हँसते हुए, प्रसन्नता के साथ आयेंगे।'

९ जुलाई से १६ ता० तक प्रदर्शनी रही। बहुत कुछ खर्च हुआ होगा। उसका हिसाब मेरे पास नहीं। नीला ही जाने। दाखिल होने की दो आने फ्रीस थी। टिकिट खूब बिके। सोचता हूँ, अन्नपूर्णा-माँ के सारे पैसे वसूल हो गये होंगे।

प्रदर्शनी में खर्च उपस्थित था। नीला भी थी। उसकी दो सहेलियाँ आ गयीं। 'भवन' के दो उदार-हृदय कर्मचारी स्वयंसेवक तैनात हो गये। नीला अभ्यागतों का स्वागत कर रही थी। उनके साथ जाकर रेखाओं को स्पष्ट करती हुई, रंगों और लकीरों का शब्दों में बयान दे रही थी।

यह सब अच्छा ही तो लग रहा था। एक ओर खड़ा अपनी जीवित कौर्ति को देख रहा था। दो एक मिनिस्टर आये। कुछ विदेशी भी। सरकारी और गैर-सरकारी बड़े आदमियों से लगाकर स्कूल और कालेज के लड़के-लड़कियों की भीड़ कम नहीं थी। आर्टस्-स्कूल के तो प्रायः सारे विद्यार्थी सरकार-साहब के साथ आ गये थे।

सरकार साहब ने नीला ने पूछा, 'राम कहाँ है?' नीला मुझे पकड़ ले गयी। कुछ संकोच महसूस कर रहा था। जैसे कोई क्वारी कन्या सम्पूर्ण शृंगार के साथ पुरुषों की भीड़ में खड़ी हो गयी हो।

सरकार साहब ने गद्गद् स्वर में कहा, 'राम, मुझे गर्व है—मैं तुम्हारा टीचर हूँ।'

मैं विनीत होकर झुक गया।

'कम।' उन्होंने कहा। मैं उनके साथ साथ चलने लगा। 'चरणरज' चित्र के सम्मुख खड़े होकर बोले 'मैंने इसकी सारी कहानी सुनी है, राम'

उस दिन की याद आयी। चुप रहा।

उनके साथ ही एक लड़की थी। कुछ अधिक उत्सुकता के साथ आगे चली आयी। देखा, यह वही है, जिसे मैंने अपने 'अर्द्ध-नारीश्वर' चित्र में स्त्रीत्व के रूप में लिया था। उस चित्र को देख कर एकबारगी वह ठगी—सी रह गयी।

मैं भी एक क्षण के लिए अपनी ही कृति के मामले रुक गया। जिसने एक दिन मुझे अनजाने में विश्वासपूर्वक किसी को देने के लिए पर्स सौंप दिया था। यह वही है।

कहने लगी, 'अर्द्धनारीश्वर एलिफेंटा-केबज की मूर्ति की यदि अनुकृति है, तो सही नहीं है।'

—अनुकृति तो नहीं। प्रेरणा अवश्य उसी से मिली है। लेकिन समझ यह नहीं पाया, कि स्त्री अपने को स्त्री समझने के बाद, और पुरुष के अपने पुरुषत्व के प्रबोधन के बाद वह अर्द्ध-मिश्रित कैसे हो सकता है? यह तो शिशु-अवस्था में संभव है। इसीलिए यह अर्द्धनारीश्वर शिशु-रूप ही है। इसमें स्त्री की स्त्रीज गलत है, और पुरुष की भी। यह इन दोनों सीमाओं से परे है। तभी तो इसे बनाते समय मैंने ख्याल रखा कि स्त्री और पुरुष के अलग अस्तित्व को कहीं मिला न दूँ, बल्कि दोनों का जो मौलिक है, उसे ही रहने दूँ। रख सका हूँ, या नहीं, यह नहीं जानता।

--नहीं रख सके। इसलिए कि मोडेल का इस्तेमाल किया गया है।

--इस्तेमाल तो नहीं किया। लेकिन अचैतन रूप से यदि ऐसा हो गया है, और जो पेश करना चाहता था नहीं कर सका हूँ, तो मानूँगा कि यहीं तक पहुँच सका हूँ। इससे आगे बढ़ना अभी तक बाकी है।

उसकी ओर गौर से देखकर हँस कर पूछा, 'आपको ऐसा लगा है कि आपका चेहरा इसमें आ गया है? क्यों?'

उसने सिर हिला कर स्वीकार किया।

--तो अपनी भावनाओं के अनुकूल तुम्हारा चेहरा ही मेरे मन-मस्तिष्क में रहा होगा। इस दिन की घटना याद है?

--अब याद आ रही है।

--सरकार साहब आगे चले गये हैं। जाइये, और जो कुछ भी है उसे देख आइये।

--जाने दीजिए। आपके साथ देखूंगी।

मेरा मन लज्जित होकर लाल हो आया। मन ही मन कहना चाहा, 'नहीं, नहीं।' लेकिन प्रत्यक्ष में कुछ नहीं बोला। जैसे स्वीकार कर लिया हो। कहा, आइये।

वह मेरे साथ चलने लगी। पेंटिंग्स पर उसकी निगाहें नहीं धमी। कहने लगी, आपका नाम बहुत संक्षिप्त है।

--हाँ। है तो।

--यह तो अच्छा नहीं लगता। याद रखना भी मुश्किल है। थोड़ा विस्तार कर डालिये।

--धन्यवाद।

--आपकी उम्र क्या होगी?

--जी?

--यही, उम्र?

--ठीक से याद नहीं।

--फिर भी।

--समझ लीजिये अठारह के लगभग।

--जन्म-तिथि याद है।

--नहीं।

चुप हो गयी ।

मौन टूटा । पूछा, 'आपने कितने दिनों में यह तैयारी की होगी ?'

-करीब एक महीना समझिये ।

-एक महीने में ! उसने आश्चर्य व्यक्त किया । 'रिअली !'

-इतने थोड़े समय में एक साथ इतनी विभिन्न चीजें कैसे बन सकती हैं ?

-कैसे बनीं, यह तो नहीं जानता । खास कर इतने थोड़े असें में, कैसे जवाब दूं ? फिर भी बन तो गयी ही हैं । आपने तो काफी इम्तिहान ले लिया । मैं तो खैर प्रदर्शन के लिए रखा ही गया हूं, इसलिए सवाल पूछे ही जाने चाहिए, कुछ आपसे भी पूछूं ?

-कहिye ?

-सचमुच आप बहुत सुन्दर हैं । मोडेल का हिमायती मैं नहीं । लेकिन यदि कुछ समय दे सकें, तो ऐसा सौन्दर्य किसी भी कलाकार के लिए संग्रहणीय ही होगा । सौभाग्य से ही, प्रभु का इतना बड़ा कृतित्व दर्शन के लिए सुलभ हो सकता है ।

मुक्त हंसी के मध्य उसने कहा, 'ओहो, तो यहां की सारी भीड़ भी बड़ी सौभाग्यशाली होगी ।'

-सो तो नहीं जानता । लेकिन होनी तो चाहिए ।

-चाहिए, अर्थात् है नहीं । चाहिए !

-कहा न मैंने, सौभाग्य अतीत का परिणाम नहीं । वर्तमान की आकांक्षा का उत्तर है । यहां इसके लिए यदि मैं अकेला ही हूं, तो भी गलत नहीं होऊंगा ।

-तो कलाकार साहब, आप मेरा स्केच बनायेंगे ? और यहीं कहीं, किसी के सौभाग्य का उत्तर देने के लिए टांग देंगे, क्यों ? मुझे ही फिर यहां क्यों न कहीं खड़ी कर दें ? जीवित-कला की विरोधी नहीं हूं । लेकिन कला वह भी है, जिसमें से जीवन निकलता है । जीवन से कला की जो खोज है, वह पेशा हो सकता है, कमर्शियल-आर्ट हो सकता है, फाइन-आर्ट नहीं । किसी के प्रकृतिदत्त सौन्दर्य की प्रशस्ति गाने में कलाकार की निरोपता ही क्या ? बल्कि इस मीडियम को अधिक महत्व देना; जो लाचार हैं, उनकी हंसी उड़ाना ही तो है ।

इतने लम्बे लेक्चर, और दुरूह दार्शनिक भाषा को समझने का प्रयत्न करता रहा । हीनता का दौरा फिर सवार हो गया । सोचा, कितना कुछ

जानने को है, और कितना कम जानता हूँ। कला क्या है ? इस बारे में मनीषियों ने क्या कहा है, इस बारे में तो बिल्कुल कोरा ही हूँ।

मुझे खामोश कराने में उसे बड़ा संतोष हुआ होगा। कहा, आइये आपने जो किया है, उसे तो देख ही लें।

चित्रों की महत्ता समाप्त हो गयी। नीरस और उत्साह-रहित भाषा में हिसाब देने बैठा :

—यह चित्र है, गाढ़िया लुहारों का। राजस्थान के प्रतापी राणा के साथ इनके वंशजों ने प्रतिज्ञा की, कि वे थाली में खाना नहीं खायेंगे, बिछौने पर सोयेंगे नहीं, कहीं स्थिरता के साथ डेरा नहीं डालेंगे। प्रताप को राज्य मिला। अमरसिंह के दरबार में वेदयाएं नाचीं, मौजें उड़ी, गुलछरें उड़े, भामाशाह की धन की थैलियां मुक्त थीं। लेकिन ये अभागे गाढ़िया-लुहार आज भी** अपनी प्रतिज्ञा में बंधे हुए, इधर-उधर भटकते फिरते हैं। ऐसे अभिशप्त जीवन...

उसने टोका, अज्ञान की वेदी पर जिन्होंने आत्म-हत्याएं की हैं उनके प्रति इस चित्र द्वारा किस की सहानुभूति हो सकेगी ?

कट सा गया। आगे बढ़ा। गला साफ करके अपने दूसरे चित्र की व्याख्या की:—

—यह है ताजमहल। जिसकी सुन्दरता जगत-विख्यात है। लोग कहते हैं, शाहजहां ने इसे बनवाकर, अपने प्रेम को अमर कर दिया। लेकिन उन हजारों औरतों के सुहाग की कब्र भी यहीं है, जहां पर मजदूरों के प्राण कीड़े मकोड़ों की तरह इस विशाल गुम्बज पर चढ़ते समय गिर कर यमुना में विसर्जित हो गये, और जिनके लिए किसी ने एक आंसू तक नहीं बहाया।

—इसलिए इसे प्रेम-स्मारक न कहा जाय ?

—कहने वालों को रोका नहीं जा सकता। लेकिन यह प्रेम कितना भयानक था, कहना यह है।

‘हुम्’। इस हुंकारकी ध्वनी के आगे पराजित हो गया।

—यह है, युग-चिन्तक ! जिसके चारों ओर उज्ज्वल प्रकाश फैला हुआ है, पर वह अपनी छाया, अन्धकार के घेरे के अतिरिक्त कहीं कुछ देख नहीं पाता।

** अब प्रधान-मंत्री श्री नेहरू द्वारा उन्हें प्रतिज्ञा मुक्त कर दिया गया है।

‘और यह है चरण-रज !’ कहकर जैसे उसने मेरी तमाम प्रभावशाली बातों को उतार कर फैंक दिया ।

इसलिए इसी तरह के जो और चित्र थे, उन्हें बताने की, उनकी व्याख्या करने की रुचि नहीं रही ।

तभी एक भारी भरकम, मोटेताजे रोबीले से विदेशी सज्जन ने आकर पूछा, ‘आप ही का नाम मि० राम है ?’

मैंने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया ।

—मैं आपकी ‘ताजमहल’ वाली पेंटिंग खरीद रहा हूँ । बहुत पसन्द आयी । यह है चैक । प्रदर्शनी खत्म होने पर मेरा आदमी आकर ले जायगा । कहकर उन्होंने चैक मेरी ओर बढ़ा दिया ।

तभी वह बीच में पड़ी ! कहने लगी, ‘यह मैं खरीद चुकी हूँ ।’

खरीद-बिक्री की बात भूल कर पूछ बैठा, ‘लेकिन यह तो आपको पसन्द नहीं आयी थी ?’

—पसन्द आने लायक वह है भी नहीं । खरीद तो इसलिए रही हूँ, कि ऐसी चीजें हिन्दुस्तान के बाहर जाकर यहाँ का अच्छा-खासा मजाक उड़ाती हैं । इसलिए यदि राष्ट्र के गौरव के लिए मैं कुछ खर्च करती हूँ, तो आपके द्वारा इसे बेचे जाने का प्रायश्चित्त हो जायगा ।

उन साहब ने ध्यान से इस लड़की की बात सुनी । मुझे ख्याल आया—कोई अस्पष्ट चीज रह गयी है । उन्होंने चैक वापस नहीं लिया, कहा, ‘कोई बात नहीं, ‘चरण-रज’ पेंटिंग के लिए ही सही । लीजिये ।’

मैंने धन्यवाद सहित चैक ले लिया ।

लेकिन इस अपरिचित लड़की द्वारा किये गये अपमान को भूल नहीं सका । पूछा, ‘जो सत्य है, उसे पैसे के बल पर कब तक छिपाये रखेंगी ?’

—पता नहीं यह सत्य है, या वह; कि आज तक ताजमहल के लिए लोगों की श्रद्धा-भावना जमी हुई है । इसका मूल क्या था, कौन जानता है, प्रस्तुत जो है, वह बुरा नहीं है, यह मैं जानती हूँ । यदि ताजमहल जैसी इमारत को महल अथवा किले कोर्ट की जगह प्रेम-स्मृति-चिह्न मान लिया जाय, तो कौनसी बुराई होगी !

जो बहुत अधिक सेंसेटिव [नाजुक] है, इस पीड़ा को वे ही समझ सकते हैं । दुखी होकर बोला, ‘आप जाइये । जैसा भी हूँ, ठीक हूँ । आपसे मिल कर दुख ही हुआ ।’

प्रत्युत्तर में उसने अपनी चैक-बुक निकाल कर चैक दे दिया । कहा, यह उम चित्र की कीमत है ।

बिना मेरी ओर देखे, वह चली गयी ।

गुस्सा था, सो सोच रहा था, अच्छा हुआ । पिंड छूटा ।

एक लड़का और प्रदर्शनी में मिला । वह कुछ 'नख-चित्र' ले आया था । मुझे कहा, देख लीजिये, और लिख दीजिये, 'अच्छे हैं।' मैंने लिख दिया ।

मालूम हुआ उसका नाम है, मृणाल मांझरेकर । यदि वह नहीं आयी होती, तो उम प्रदर्शनी को अपनी बहुत बड़ी सफलता समझता ।

लेकिन वास्तव में यदि मृणाल जीवन में ही न आयी होती तो ?

आठ :

प्रदर्शनी में जो कुछ खर्च हुआ, उसके बाबजूद लगभग पाँच सौ रुपये बच गये थे । तीन चित्रों की बिक्री से आशातीत पैसे मिले । टिकटों की आमदनी से प्रारंभिक खर्च निकल गया होगा । हिसाब-किताब नीला ने ही किया । मुझ से यह हो नहीं सकता । हो सकता हो, तो भी करना नहीं चाहता । 'आई केन, बट आई विल नॉट' वाली बात समझिये ।

मां-अन्नपूर्णा का प्रोत्साहन एवं कृपा नहीं होती, तो प्रदर्शनी ऐसी न होती । वे मुझे प्यार करती थीं, और तहे-दिल से करती थीं । हालांकि 'यदि यह चेहरा आपके मृतक-पुत्र से न मिलता, तो भी प्यार करतीं ?' ऐसा सवाल पूछ कर मैंने उन्हें कड़ी चोट पहुंचा दी थी । प्रश्न जितना कटु था, उत्तर उतना ही सुखद रहा ।

नीला ने प्रदर्शनी के समाप्त होने पर ठाकुरजी को प्रसाद चढ़ाया । मैंने पूछा :—इसकी क्या जरूरत थी नीला ?

—प्रभु की कृपा थी, तभी तो ऐसी कामयाबी मिली । यह श्रद्धांजलि है । इसकी आलोचना नहीं की जाती ।

कुछ रुक कर कहने लगी, 'राम इतिहास के प्रति जब विरक्ति होती है, तब इस अज्ञात और अज्ञेय भावना के करीब जाकर मन को बड़ी शांति मिलती है। ऐसा नहीं होता, तो धर्म और देवताओं के विभिन्न रूप सारे संसार में क्यों मौजूद होते ? भगवान चाहे हों, चाहे न हो, लेकिन उस अव्यक्त के प्रति जो व्यक्त श्रद्धा है, उसमें कोई ऐसी मौलिक चीज है, जिसके कारण वह इतनी विशालता और दीर्घता प्राप्त कर सकी है। कोई चीज लम्बे असें से चली आ रही है, सिर्फ इसीलिए उसे मही नहीं कह रही हूँ, बल्कि कह रही हूँ यह, कि वह आज भी मुक्तिबोधक है। इसलिए तर्कातीत है।'

भगवान को लेकर जगड़े-झमेले में कभी पड़ा नहीं। माँका ही नहीं मिला। अनाथालय में जिस भगवान के प्रति प्रार्थना करवायी जाती थी, उसका अर्थ उस समय नहीं समझता था, आज भी नहीं जानता। शायद इसीलिए भगवान के किसी अनुलनीय और सुन्दर स्वरूप का साक्षात्कार कभी हो नहीं सका। लेकिन जब कभी अन्तर को टटोलता हूँ, तो पाता हूँ कि बंधी हुई परम्पराओं से विपरित सोचने पर भी, आदर्शों के लिए पीछे ही मुड़ कर देखना पड़ता है। इसलिए इस परस्पर के मौलिक स्वरूप के बारे में खुल कर आज तक अनास्था प्रकट नहीं कर सका। यही मान कर चुप हो जाता हूँ कि स्वल्प बुद्धि में सब कुछ समा जाय, यह अभी सम्भव नहीं है।

जो हो प्रसाद मैंने प्रेम-पूर्वक ग्रहण किया। भगवान के प्रति सम्मान ही प्रदर्शित किया। शायद इसलिए कि नीला की सिफारिश थी।

मैंने कहा—नीला, प्रदर्शनी सफल ही रही। लेकिन मोचता हूँ अभी तक बहुत कुछ शेष है, जो जानना है। वहाँ एक लड़की आयी थी। प्रथम परिचय में ही वह इतनी कट्टर आलोचक बन गयी, कि देख कर डर लगे। आखिर हाथ जोड़कर कहा, 'जाइये।' तब गयी।

—जानती हूँ। माझरेकर की बात कह रहे हो न ? तुम ये चाहे लड़-झगड़ आयी हो। लेकिन मुझे तो कह रही थी कि तुम्हारी मौलिकता अद्वितीय है। तुम्हारा जन्म-दिन पूछ रही थी। कहती थी, उस दिन कुछ उपहार दूंगी।

मैंने उतावला के साथ पूछा, 'और तुमने क्या कहा ?'

—मैंने जन्म-तिथि बता दी।

—तुम्हें क्या मालूम ?

—नहीं तो तुम्हें मालूम होगी ?

-क्या कहा ? कहो तो ?

-कहा, पन्द्रह अगस्त को वर्ष-गांठ है ।

-दिन तो बड़ा महत्वपूर्ण है । पर इसीलिए यह तुम्हारे राम का जन्म-दिन भी हो, यह तो कोई बात नहीं हुई ।

-जिस महापुरुष को इस बारे में कोई ज्ञान नहीं, उस तटस्थ के लिए इससे अधिक पुण्यवान तिथि क्या हो सकती है ?

-तुमने तो नीला हृद कर दी । फिर, उसने क्या कहा ?

-बड़ी देर तक हंसती रही । कहने लगी, मेरी जन्म-तिथि २६ जनवरी है ।

-जैसा तुमने कहा, वैसा ही उसने जवाब दिया । बड़ी घाघ लड़की है । मुंहफट । तुमने तो सच मान लिया होगा ?

-नहीं तो उसकी जन्म-पत्री मंगवाती ?

-वेचारी ने मेरी जन्म-पत्री भी तो नहीं मांगी होगी ।

-मांगी होती, तो दोनों की जन्म-पत्री मिलाकर निर्णय दे देती ।

संकेत समझ कर नाराज हुआ । दुष्टता पर क्रोध भी आया ।

मैंने कहा, नीला मांझरेकर को देखकर मन में बड़ी विचित्र भावना उठी ।

-क्या ?

-यही कि उसे खूब पीटूं ।

-अभी तक यह जंगलीपन गया नहीं ।

-यह तो जन्मगत संस्कार है । क्या कहूं ?

-बुरी बात है । बहुत बुरी । कभी कोई ऐसी-वैसी हरकत की, तो समझ लेना कि हाथ-पैर तोड़ कर एकाकार कर दूंगी ।

प्रदर्शनी में 'टाइम्स' के एक हजारत मिले थे । मुझे जानते हैं । कहने लगे 'वाट ए न्यूड मोडेल थिंक्स अब्राउट एन आर्टिस्ट' लेख लिख कर दूं, तो वे छापेंगे । विषय मौलिक है । दिलचस्प भी । आर्टस् स्कूल की लाइब्रेरी में 'बोम्बे आर्ट सोसाइटी' के वार्षिक-विवरण की जितने मिल जायेंगी । पिछले दो-चार साल की छा सको, तौ देख कर, जिनके लिए

मैं मोडेल रही हूँ, लिखूंगी कि क्या सोचती हूँ, उनके बारे में, उनका कला के बारे में। वैसे तो सब कुछ याद ही नहीं रहता।

मैंने कहा, आज ही ला दूंगा। वहाँ की लाइब्रेरी की बड़ी सेवा की है मैंने। सरकार साहब की इजाजत मिल जायगी तो वार्षिक रिपोर्ट्स मिल जायंगी।

लाइब्रेरी में बैठा आर्ट-सोसायटी के वार्षिक-विवरणों की जिल्दें देख रहा था। समय-समय पर जहाँगीर आर्ट गैलरी में आयोजित प्रदर्शनियों में प्रदर्शित चित्रों के आर्ट-पेपर पर छपे हुए फोटोग्राफ्स थे। कई तो अत्यन्त सुन्दर थे। उन्हें 'सुपर-क्लासिक' कहा जा सकता है। लेकिन चित्रकारों का भारत में अभाग्य ही है कि स्थायी कीर्ति पाने का उनके पास कोई साधन नहीं।

देखने में डूबा हुआ था कि किसी ने पास का स्टूल खींच लिया। मुड़ कर देखा। मृणाल थी। वह भी पढ़ने की योजना बना रही थी। मुझे देखा तो नमस्कार करके पूछा, क्या पढ़ रहे हैं ?

मैंने हंस कर जवाब दिया, पढ़ रहा हूँ कि पेंटिंग्स को देखने के बाद किसी को स्त्रियों के बारे में क्या सोचना चाहिए ?

-ऐसे चिन्तन की क्या जरूरत पड़ गयी ? फिर, वह भी इस नूतन तरीके से ?

-कभी किसी काम ही आयगा। संचित ज्ञान धोखा तो नहीं ही देता।

-लेकिन महाशयजी, ऊल-जलूल बातों को ज्ञान कह कर उस पर भरोसा मत करना।

फिर नाराज हो गया। मुंह फुला कर कहा, अनमांगी राय के लिए धन्यवाद।

उन दिनों वह ऐसी ही थी। नाराजगी से ही उसे प्रेम था। जो उस पर गुस्सा हो, वही उसके लिए प्रिय। जो लाइ जतन करे, वह ? ठीक से नहीं जानता कि दुश्मन होता या नहीं !

उस दिन हंस कर कहने लगी, 'माफी मांगती हूँ। एक काम से आपसे मिलना था।'

रिपोर्ट में मुंह छिपाये ही पूछा, कहिये ?

-एक दिन आप मेरा स्केच बनाना चाहते थे न ?

--एक दिन चाहता था ।

--अब नहीं ?

--नहीं ।

--मैं तो आज भी वैसी ही हूँ । खैर, आज मैं आपका चित्र बनाना चाहती हूँ ।

--चाहा कीजिये । मैं क्या करूँ ?

--आप मोडेल बन सकते हैं क्या, यह पूछ रही हूँ ।

बात उसने बदल दी थी; मैं बिलकुल शिशु नहीं, कि न समझ सकूँ । किसी भी तरह बहला कर अपमान करने में इसे बड़ा मजा आता है, यह जानता था । इसलिए जवाब नहीं दिया ।

फिर पूछा, आप मोडेल बन सकते हैं ?

मुंह से निकल गया, तो क्या होगा ?

--उससे आपको मतलब ? आप यदि मोडेल का काम दें, तो मैं फीस दे दूंगी ।

यह धोले सूरज की तरह साफ है, कि वह रईस है और मैं नहीं हूँ । फिर भी इसे ऐसा आधार नहीं माना जा सकता, कि कोई किसी का व्यर्थ अपमान करे । गुस्से से ही कहा, 'फीस आप दे सकेंगी ?'

--विश्वास न हो, तो तय कर लीजिये ।

--पैसे का गहर छोटा होता है मृणाल । वह बहुत थोड़ा दे सकता है ।

--देखिए भाव-ताव करने हों, तो फालतू की फिलासफी मत झाड़िये । कहिए, क्या लेंगे ?

--आप देंगी ?

--दूंगी ।

--जाने दीजिये, शायद नहीं दे सकेंगी ।

--कहिये तो ।

--कह तो रहा हूँ, आपके बस की बात नहीं । मैं बड़ा महंगा मोडेल हूँ ।

--महंगाई देख कर ही शायद किसी रईस का मन चल जाय ।

--दे सकेंगी ?

--दूंगी ।

--अच्छा । बताइये, कितना समय लगेगा ?

—यही करीब दो घंटे ।

—दो के बजाय, तीन घंटे आप कहेंगी, वैसा खड़ा रहूंगा। बाइ में फीस...

—ना, पहले ही तय कर लीजिये ।

—आपको खूब पीटूंगा। जितना पीट सका ।

ऐसे उत्तर की अपेक्षा नहीं थी। विराक्ति और लज्जा के मारे वह आरक्त हो गयी। मेरी ओर ठीक उसी तरह देखती रही, जैसे किसी कसाई की ओर वैष्णव देखता है। बोली, अच्छी बात है। वचन दिया है, मंजूर है! चार बजे फाटक पर मिलिये। घर पहुंचाने के लिए प्रबन्ध हो जायगा।

जहां चरम सीमा हो सकती है, वहां से यह बात प्रारंभ कर रही है। इसलिए सिमट गया।

वह झमक कर चली गयी।

जी किया, कि भाग जाऊं। कहीं सचमुच ऐसा होता है, क्या? अभी तक सिविलाइज्ड-मेनर्स [सभ्य आचरण] तक मुझमें नहीं। लेकिन जानता था कि अभी तक बहुत कुछ होना बाकी है, इसलिए जड़ बना बैठा रहा। भूल गया कि नीला इन जिल्दों के लिए मेरा इन्तजार कर रही होगी।

अनजाने में ही रिपोर्ट में प्रकाशित पेंटिंग्स देखने लगा। सोच रहा था, इनमें अंकित स्त्रियों में कहीं यह मृणाल भी है या नहीं? कौनसा ऐसा कोश है जहां ढूंढकर देख सकूं कि आखिर वह चाहती क्या है, वह स्वयं है किस धातु का?

ठीक समय पर वह आयी।

चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं। कहा, चलिये।

‘नहीं’, नहीं कह सका।

दरवाजे पर चमचमाती कार खड़ी थी। दरवाजा खोल कर बोली, ‘बैठिए’, बैठ गया। पास आकर उसने दरवाजा बंद कर दिया। कार रवाना हो गयी।

घर आलीशान, साफ-सुथरा, ऐश्वर्य-सम्पन्न।

उस समय अपरिचित-सा था; इसलिए सिकुड़ा-सिमटा निराधार बैठा रहा। अब उसके बारे में जानता हूं, इसलिए संक्षिप्त परिचय दे दूं। स्वर्गीय

पिता डाक्टर थे। मां ने विलायत में ऊंची शिक्षा पायी। एक बहन थी। एम० ए० में फेल होने पर नृत्य सीखने लगी थी। बड़ा भाई स्थानीय अंग्रेजी के एक अखबार में न्यूज-एडिटर था। सारी पारिवारिक धाराएं, विभिन्न। बिल्कुल स्वतंत्र। मां का लाड़-भरा अनुशासन, और उसके अतिरिक्त पूरी आजादी।

मांझरेकर का पूरा नाम है मृणाल जे० मांझरेकर। एग्रीकल्चर लेकर बी० एस० सी० की। मन वहां से विरक्त हुआ तो आर्ट्स स्कूल ज्वाइन कर ली। उम्र बांस के लगभग होगी। किसी भद्र महिला से ऐसा सवाल पूछा नहीं जाता। इसलिए इस बारे में ठीक से नहीं जानता। लेकिन अंदाज गलत नहीं होगा। उम्र में बड़ी होने पर भी कद की ठिंगनी होने के कारण मुझसे छोटी ही दिखती थी।

उसके साथ उसके निजी कमरे में गया। चारों ओर नाना प्रकार का छितरी हुई सामग्री। सफाई के नाम पर पलंग और टेबल का कपड़ा मात्र। इधर-उधर अखबार, पुस्तकें, रंग के डिब्बे, ब्रशें। स्टेंडिंग बोर्ड, और इसी तरह का अल्लम-गल्लम। सामान इतना अधिक था कि उस विशाल कमरे को भी उसके लिए कम ही कहा जा सकता है। चारों ओर खिड़कियां, कि खोल दी जायं, तो हवा और प्रकाश से सारा कमरा भर जाय।

अन्दर पहुंचते ही नौकर को बुला कर सारे बिखरे हुए सामान को समेट कर पलंग के नीचे डाल देने को कहा।

मेरे बैठने की चिन्ता उसने नहीं की।

जिस अजीब परिस्थिति में प्रस्तुत था, उसमें सांस नहीं ले पा रहा था। सोच रहा था, सचमुच ऐसी भी कोई फीस होती है कि मैं उसे पीटूं? जो यह अभी सामने से घूम कर कहे, पीटो! तो?

स्टेंडिंग-बोर्ड [इजल] पर कागज लगाकर, क्लिप से जमाकर चारकोल उसने हाथ में ले लिया। मेरे पास आयी। कहा, ठीक सामने खड़े होकर दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर तन कर, सीधे खड़े हो जाओ। हिलना मत।

आदेशानुसार निश्चल खड़ा हो गया।

वातावरण के रखेपन को कम करने के लिए हंस कर कहा, 'तुम तो जीवन में कला को उस दिन व्यर्थ बता रही थीं। कला में जो जीवन डूब लेते हैं, उन्हें भी मोडेल की जरूरत होती है?'

-यह मत समझना कि जो बनाना चाहती थी, वह तुम्हारे बिना, बना ही नहीं पाती। वह तो बनता ही। लेकिन तुम्हें यहाँ इसलिए खड़ा रख रही हूँ कि बता दूँ कि जीवन में कला किस प्रकार प्रवाहित हो सकती है।

-इस प्रकार !

-हाँ ऐसे भी। स्थूल रूप से जो सुन्दर दिखायी देता है, उसमें मन की सूक्ष्मता नहीं धोली जा सकती, ऐसा मत समझना।

-नहीं समझूँगा।

-कोई क्या है, कैसा है, इसका हिमाव लगाना सहज नहीं; और जरूरी भी नहीं। लेकिन फिर भी उसे प्राप्त करने का, चाहे वह देखने के विलाम के लिए ही क्यों न हो, प्रलोभन किसी को हो, तो निष्कर्ष का अर्थ, दर्शक की दृष्टि पर ही आधारित होगा। उस दिन यही कह रही थी, जीवन स्थिर और जड़ है नहीं। इसलिए सत्य के स्वरूप भी ऐसे नहीं। जीवन में जो है, वह सत्य हो सकता है। लेकिन कला प्रस्तुत-सत्य की ही प्रतिच्छाया नहीं। वह एकपक्षीय, अपरिवर्तनशील और चिरंतन है। चिन्तन से प्रस्तुत व्याख्याएं सत्य को बदल देती हैं। लेकिन जो चिरंतन है, वह अप्रभावित ही रहता है।

-तुम्हारी बातें समझने की योग्यता मुझमें नहीं। सीधी-सी बात जानता हूँ कि जो बना सकता हूँ, जो बन जाता है, वही बनाता हूँ। क्यों बनाता हूँ, और क्या बनाना चाहिए, यह नहीं जानता।

-यही तो बात है, इसीलिए तो हमारी कला जीवन को हिला देने वाली, झकझोर देने वाली नहीं हो पाती।

यह सोच कर चुप हो गया कि मोडर्न-आर्टिस्टों को कुछ भी बनाने के पहले और बाद में काफी कुछ समझना होता है। मेरे सामने की ही बात है, एक आधुनिक कलाकार महोदय ने एक मुंहफट पत्रकार ने पूछ लिया, 'इस शैली में क्या आप अपनी प्रेयसि का चित्र भी बना सकते हैं ?' इस पर चित्रकार महोदय का मुंह लाल हो आया था। ठीक उसी तरह, जाने किस प्रकार के मिद्धान्तों को पढ़ने, जानने-समझने के बाद, इस भली लड़की ने जो निष्कर्ष निकाले हैं; मुझे उस पर तरस ही आया। सो अधिक बहस नहीं की। बल्कि यों कहूँ, कि प्रस्तुत हो गया कि जो कुछ वह बनायेगी, वही चिरंतन सत्य होगा। उसी में जीवन का समस्त शौर्य और प्रभुता होगी।

बस, केवल इसी पंक्ति को वह बारम्बार दुहराती रही। कंठ उसका अत्यन्त सरल, उच्च और मधुर था। खड़े रहने की थकान दूर हो गयी।

गुणगुणाना समाप्त हुआ। चित्र बन गया। हाथ नीचे कर लेने चाहे, मो इजाजत नहीं मिली। कहने लगी, काम खत्म नहीं हुआ, बिना हिले वैसे ही खड़े रहो। फिर अटेन्शन में खड़ा हो गया। पूछा, चित्र देख सकूंगा ?

इशारे में ही उत्तर मिल गया 'नहीं'।

चारकोल रख कर रंगों का ट्रे लेकर खड़ी हो गयी। हे भगवान, यदि फलरिंग मोडेल को इसी तरह खड़ा रखकर ही हुई; तो मैं उर्ध्व-ऋषी हो जाऊंगा, जो सूर्य-उपासना के लिए हाथ ऊंचे किये तपस्या करते-करते अपनी टांगें खो बैठे थे।

सम्भवतः दया आ गयी। पूछा, थक गये ? चाय पीयोगे ?

प्रार्थना की, पीऊंगा। कृपा होगी।

नौकर को बुलाकर आदेश दिया। मैं अभागा खड़ा रहा।

कलर-प्लेट अन्ततोगत्वा उसने नीचे रख दी। अपना कृतित्व निहारती रही। धन्यवाद देकर अंग्रेजी में कहा, यू आर द परफेक्ट मोडेल फॉर मी !
[तुम मेरे लिए सही मोडेल हो]

पूछा, काम खत्म हो गया ?

-हो गया।

-देखना चाहता हूँ।

--अभी नहीं। पहले चाय पी लो।

नौकर चाय लाया। पी।

मृणाल ने इजाजत दी कहा, आओ, देखो।

स्टैंडिंग-बोर्ड के सम्मुख खड़े होकर देखा।

सरि उपास्थित को भूल गया; अनुपास्थित, पर बद्ध-मूल मेस्कार मजंग होकर केन्द्रित हो गये। हीनता का भयंकर दौरा फिर आया।

भाव चित्र का शब्दों में वयाम देना गलत है। जो कुछ भी कहा जायगा, वह उसका आभास मात्र ही होगा। लेकिन चित्र कह यहाँ रहा था कि एक परम-पुरुष, जिसका उठा हुआ भाल, वृषभ स्कन्ध, चौड़ा सीना, तनी हुई भुजाएँ, ऊपर से प्रकाश की अपरम्पार वर्षा, दोनों हाथों में विश्व को धामे हुए।

-यही है, यह राम ! क्षुद्र, संक्षिप्त और छोटा सा राम ! मुंह में अचानक ही निकल गया, मृणाल, यह राम है ? यही तुम्हारा मॉडेल है ! ऐसा नहीं है वह । इतना बड़ा नहीं, इतना विशाल नहीं ।

-तुम्हारी व्याख्याओं को आज तक नहीं समझ सका । लेकिन तुम्हारे कृतित्व को समझ सकता हूँ । सशक्त है !

मैंने गंभीर स्वर में कहा, तुमसे बहुत कुछ सीखा मृणाल । कृतज्ञ हूँ ।

-और तुम्हारी फीस ?

-अब अधिक मत करो ।

-नहीं । मैं सामने हूँ । मॉडेल बन कर खड़े रहे हो । दुग्व उठाया है । फीस तो लेनी ही होगी ! कहती हूँ, पाटो !

झुक कर घुटनों के बल बैठ गया । कहा, अपराध हुआ, दंड दो ।

बालों को बड़ी बर्बरता से पकड़ कर उसने मेरा सर ऊपर उठाया । पीछे की ओर धक्का देती हुई उसके हाथ की पांचों उंगलियाँ मेरे गाल पर उभर आयीं ।

देखा, वह कांप रही थी ।

स्त्री चरित्र को समझना देवताओं के लिए चुनौती है । आदमी के लिए तो क्या कहा जाय ?

सब कुछ भूल गया । याद रहा, वह चित्र ! उस चित्र का राम; और उस उन्नत राम के सामने यह छोटासा राम माथा झुकाये बैठा रहा ।

शत-शत कंठों के साथ मृणाल की निर्मलता मेरे मन-प्राण में गूँज रही थी । भाराक्रान्त सा, उस चित्र की स्मृति लिये घर आया ।

मृणाल की एक-एक मुद्रा उसका प्रत्येक भाव, उसके अंगों की अनेकानेक हलचलें, उसकी सारी बातें, माथें में चक्कर काटती रहीं । तूफान चला गया, तो भी लगा कि इसके बाद भी बहुत कुछ होने को शेष है ।

लेकिन इस बहुत कुछ को उस दिन समझ नहीं सका था ।

घर आकर अपने सारे चित्र फाड़ डाले । नीला मना करती रही । जबर्दस्ती हाथ पकड़ कर कहने लगी, यह क्या पागलपन कर रहो हो ?

—नीला यह सब निराशा है, अन्धेरा है। मुझे आशा चाहिए। प्रकाश चाहिए। विद्रोह ही नहीं, विश्वास भी। व्यवस्था भी।

जीवन के अनेकानेक ऐसे प्रसंग हैं, जब कि मन करता है कि जी भर कर रोया जाय। लेकिन उसका बारम्बार उल्लेख करने में संकोच होता है। विग्रह और जिद्द के साथ उन्हें नष्ट करते हुए, मृणाल की सारी बातें कह सुनायीं खासकर उस चित्र की।

पूछा, राम, मृणाल तुझे कैसी लगी ?

गालों पर हाथ फेर कर कहा, यह देखो.....!

वह हंस पड़ी। 'यही तो तुझे चाहिए था। तेरे जैसे आदमियों का इलाज ऐसे ही होता है। जंगली-आदमी, दूसरे को भी अपने दर्जे का बनाये बिना नहीं रहता। मैं तो मृणाल से बहुत ही खुश हुई हूँ। सच !'

—तो तुम भी कसर मत छोड़ो। उस दिन तुम्हारे साथ भी तो जंगलीपन कर चुका हूँ। उसके सामने तो सिर्फ बात ही की थी।

—उस दिन तो तुझे माफ कर दिया था। लेकिन वास्तव में बिना मार खाये तुम ठीक हो नहीं सकते। लोग कहते हैं, मारना-पीटना ठीक नहीं। ठीक तो नहीं, लेकिन फिर भी थोड़ी बहुत मार तो कुछ व्यक्तियों को पड़नी ही चाहिए। हां, किस पात्र को कितनी मिले, यह जरूर सोचने की बात है।

मैं मुंह फुलाये बैठा रहा। नीला हंसती रही। 'यह तो अच्छा हुआ कि मृणाल ने तुझे पीट दिया। नहीं तो तेरी बातचीत तो ऐसी थी, कि वह अगर कुछ न बोलती तो मैं तुझे आज बिना मारे नहीं रहती।

नीला के इस विनोद से अवसाद धुल गया। 'नीला' मैंने पूछा 'एक बात बताओ, हम अजीबोगरीब आर्टिस्टों का कोई बहुत बड़ा उपयोग होता है ? ऐसा कि हम भी राष्ट्र-नायक समझे जा सकें। हम भी अपने देश को, समाज को अपना कृतित्व दे सकें। ऐसा बड़ा उपयोग हो, जिससे एकाध को नहीं, लाखों करोड़ों को लाभ हो ? ऐसा उपयोग भी कोई है ?

—हो क्यों नहीं सकता, राम। अवश्य हो सकता है। लेकिन, ऐसी महात्वाकांक्षावाले को उसकी पूरी कीमत देनी होती है। उसकी भावुकता अमर, अखांडित होनी चाहिए; उफान की तरह चढ़ने-उतरने वाली नहीं। तभी वह अथक अभिव्यक्ति कर सकेगा। तभी उसके वक्तव्य को जन-मन आंक सकेगा।

-लेकिन नीला, इससे क्या होगा ?

-इस अधिक अभिव्यक्ति का परिणाम कुछ भी नहीं होगा, यह मत कहो। रोज विज्ञापन देखते हैं, तो विज्ञापित चीज का महत्व नजरों में बढ़ जाता है। कहते हैं, आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए सत्संग करो। बौद्धिक-विज्ञान जानने के लिए अध्ययन करो। मतलब इन सब का एक ही है कि दूसरों को देखो, जानो, समझो; और तब अपने को ढूँढो। यहां तो मार्ग-निर्देशन ही है। लेकिन तुम्हारी कला तो चुम्बकमय है। वह खुद दूसरों को खींचेगी। भावनाओं की स्थिरता से जिस सत्य को तुम प्रकाशित करोगे, उसके लिए शिक्षा, समझ, बुद्धि किसी की भी शर्त नहीं होगी। वह अधिक प्रभावशाली होगी ! तुम्हारा प्रभाव उच्चकोटि का हुआ, तो उसका परिणाम लाखों करोड़ों के मन का तुम्हें अधिनायक बना देगा।

विज्ञापक को विज्ञापन करने में वस्तु की बिक्री से लाभ हो जाता है; पर तुम्हारे जागरण के चित्रों से ठीक वैसा स्थूल लाभ नहीं होगा, जैसा विज्ञापकों को हो जाता है। फिर भी जो प्राप्ति होगी वह घाटे की चीज होगी, सो बात भी नहीं। जो घाटा उठाना होगा, वही तो राष्ट्रीय जागरण के अग्रदूतों की सबसे बड़ी थाती है। यही नुकसान सहकर तूने अपना काम किया तो तेरी वह एकान्त रहने की प्रतिज्ञा सफल हो जायगी। तेरे मन का सारा अंधकार धुल जायगा। जाने-अनजाने तेरे करीब आ जायेंगे।

-तो नीला, ये जो बड़े-बड़े उच्च कोटि के भाव-चित्र बनाये जाते हैं, वे सब अकारण हैं, व्यर्थ हैं ? इन सबकी कोई जरूरत नहीं ? केवल बौद्धिक विलास ही हैं ये ?

-ऐसा तो नहीं कहती। लेकिन इस से भी कोई बड़ी चीज जरूर है। सामाजिकता न रही तो वैयक्तिक बुद्धि की संक्षिप्तता में तुम्हारी महत्वाकांक्षा का पता भी नहीं चलेगा। लेकिन वैयक्तिक बुद्धि की सम्पत्ति पाये हुए समाज को कुछ देने के लिए पहले तुझे खुद को बहुत कुछ अर्जित कर लेना होगा। तभी तू उत्साह, जीवन और रोशनी के चित्र बना सकेगा। तभी सम्भव होगा, कि तू अपनी अभिव्यक्ति से तमाम लोगों का ध्यान अंधकार की ओर आकर्षित कर सके, मौत को बता सके, निराशा को नंगी कर सके। इसी से एक दिन वे लोग उठेंगे, जो समाज में क्रांति लाने का संकल्प लेंगे। सारा काम तू खुद ही कर लेगा,

ऐसा छल हो नहीं सकता। लेकिन उन युग-पुत्रों का नजरें अपनी ओर उठा सका, तो उनके हाथों के कृतित्व के लिए तुझे और मुझे भी कम गौरव थोड़े ही होगा ?

—तो नीला, मैं यही करूंगा !

—जानती हूँ कि तुम कर सकोगे, करोगे। लेकिन अभी नहीं। अभी तो तुमने जोश नहीं देखा, जिन्दगी नहीं देखी, प्रकाश नहीं जाना। अच्छा बुरा भी अभी तक नहीं जानते। जब यह ज्ञान जाओ, तब राष्ट्र को उपदेश देना। लोग तभी मुनंगे, मानेंगे। तभी अपेक्षित लाभ होगा। नहीं तो रही सामानों के बढ़िया और अधिक तादाद में प्रसारित विज्ञापन कुछ ही दिन लोगों का नजरों में स्थिर रह सकते हैं।

—तुमने भी नीला, 'नहीं' ही कह दिया। क्या कहूँ, यह नहीं बताया।

—बताऊंगी भी नहीं। एक दिन तुम खुद सब जान जाओगे।

—कैसे, इसी तरह ?

—परिपक्वता किसी दूसरे की मीमांसा से नहीं आती, राम ! वह तो खुद की आत्म-जागृति पर ही निर्भर है। याद है गौतम का बुद्धत्व की प्राप्ति ? वह प्रशस्ति अथवा आलोचना से नहीं, निज के तत्त्वबोध से ही प्राप्त हुई थी। ऐसा ही होता है। उस दिन किसी के पास राह पूछने जाने की जरूरत नहीं होती।

—एक बात बताओ ! अज्ञपूर्णा से प्रार्थना कहूँ, तो वे मेरी नौकरी का प्रबन्ध कर देंगी। इसे तुम भी बुरा नहीं कहोगी। क्योंकि पैसों के बिना जाना असंभव है। कुछ तो करना ही होगा। लेकिन जब नौकरी कर लूँगा, पैसे पाने लग जाऊँगा, तो तुम जिस महत्वाकांक्षा के स्वरूप का जिक्र कर रही थीं, वह कैसे पार लगेगी ?

—इस बारे में जो कह सकती हूँ—वह यही, कि नौकरी करना बुरा नहीं। क्योंकि पैसे के बिना चल नहीं सकता; इसे यदि सहज रूप से मजदूरी करके प्राप्त नहीं कर लेंगे, तो एक दिन इसकी जरूरत की आवाज को मुनने का धीरज तुममें नहीं रहेगा ! तब ऊपर चढ़कर पतित होना बर्दाश्त नहीं हो सकेगा। उस दिन लुढ़कते हुए तुम कहाँ पहुँचोगे, इसका हिसाब नहीं लगाया जा सकेगा। राणा प्रताप की कहानी याद है ? वे अपनी बच्ची को नंगी और भूखी नहीं देख सके थे और संधि-पत्र लिखने के लिए तैयार हो गये थे ! वह परम-पुरुष

भी उस समय भूल गया, कि ठीक उसी लड़की की तरह मेवाड़ के हर सिपाही के वस्त्र बिलख रहे हैं। ऐसा होता है, यह असंभव नहीं, स्वाभाविक है। लेकिन स्वाभाविक इसके अतिरिक्त भी हो सकता है। उसके लिए असाधारणता की किसी भी सीमा तक जाया जा सकता है !

-मुझे तो ऐसा लगता है नीला, कि पग-पग पर मुझे तुम्हारी जरूरत होगी। इससे अधिक नहीं हूँ, इसे तुम भी मान लो। तुम जैसा बुद्धिमान होता, तो बहुत अच्छा होता। लेकिन हूँ नहीं। उपाय नहीं।

-तुम अच्छे ही बने रहो। मरते वक्त तुम्हें अपनी बुद्धि का ठेका मौप जाऊँगी।

रात अधिक गुजर चुकी थी। खाना खाने के बाद जब सोने लगा, तो कहने लगी, राम! आज तो तुम्हें नीचे ही सोना होगा।

‘क्यों’ यह नहीं पूछा। मैं ऊपर पलंग पर सोऊँ, और वह फर्श पर, यह मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। लड़-झगड़ कर उसमे जीत नहीं पाया। इसलिए यह देखकर भी कि वह मेरे लिए नीचे सोती है, मैं पलंग पर आराम में लेट जाया करता हूँ।

पलंग का मुलायम गद्दा उमने नीचे बिछा दिया। खुद हमेशा की तरह केवल शतरंजी बिछा कर पलंग पर लेट गयी।

लैम्प बुझाकर सो गया। आदत ही ऐसी है। पड़ंत ही नींद आ गयी। कुछ ही क्षणों के बाद वह मेरे सिंहाने आकर बैठ गयी। लैम्प जला दिया।

पूछा, सोने का विचार नहीं है ?

--नहीं। नींद नहीं आ रही।

-लेट जाओ। जरा से नकली खराटे भरो। आ जायगी।

--कल पन्द्रह अगस्त है राम ! हिन्दुस्तान आजाद हुआ था।

मैं उठ बैठा। हाथ पकड़ कर बोला, ‘नीला, तुम्हें तत्व-बोध हो गया। बुद्ध हो गयीं। हिन्दुस्तान की बातें सोचने की बुद्धि अभी तक मुझ में नहीं आयी, लेकिन देख रहा हूँ तुम्हारी चिन्ताएं कम नहीं। तथागत को नमस्कार, भन्ते, दीक्षा चाहता हूँ ! बुद्ध होने के लिए नहीं, मिर्फ चेला होने के लिए।

-आज एक कविता लिखी है, सुनोगे ?

-मेरे सुतल्लिक हो, तुम्हारे से सम्बन्धित हो, तो सुन लूंगा। संसार से सम्बन्धित हो, अखिल भारतीय हो तो नींद लेने दो। दिन भर जो कुछ हुआ है, जो कुछ किया है, उससे थक गया हूँ।

-इतना बुरा माती हूँ ?

-गाती तो वह मृणाल भी अच्छा है। लेकिन देखो तो गालों की हालत; खैर, नींद नहीं लेने दोगी, तो कल आंखें भी लाल हो जायेंगी। कहने वाले हैं नहीं, नहीं तो कहें, बेचारा राम स्त्रियों के झमेले में अच्छा पड़ा। खूब मार खायी।

-मृणाल ने गीत भी गाया था ?

-उसने तो सोलह कलाओं का प्रदर्शन किया था, नीला। नाचना, गाना, भाषण देना, चित्रकला, भाषाशास्त्र, गो कि कोई कला छूटी नहीं। और कला भी ऐसे ऊँचे दर्जे की, कि माथा दुखने लगे। छोटी बुद्धि पर अधिक वजन पड़ने पर ऐसा ही होता है।

-राम, मृणाल बहुत अच्छी हैं ?

यह उसने कुछ ऐसे स्वर में पूछा कि गुस्सा ही आया। मैंने कसम खाया, 'नीला, अब यदि ऐसी कोई बात पूछी, तो उसका नाम भी जवान पर नहीं लाऊंगा।'

वह हंसती रही। कहने लगी, अभी तो उसकी कला की तारीफ कर रहे थे।

-तारीफ थी वह ? भगवान ऐसी कीर्ति से बचाये !

-अच्छा सो जाओ।

-अब नींद कहाँ ? गाने पर ही उसके आगमन की संभावना हो सकती है। सो जाऊँ तो समझ लेना, कि तुम्हारा माना प्रबल प्रभावशाली है।

उसने मुझे चढ़र उड़ा दिया। कहा, अच्छा !

पास ही बैठी वह धीमे स्वर में स्व-निर्मित एक लौरी गाने लगी। कंठ की मधुरता तो जिन्दगी भर नहीं भूल सकूँगा, लेकिन लोरी के बोल उसी समय भूल गया। नींद आ गयी। स्वर का प्रभावशाली होना प्रमाणित हो गया।

सुबह उठा, तो देखा नीला अभी भी पास बैठी मेरी ओर देख रही है। सोचा, अजीब पागल है यह; रात भर अपनी कविताएँ पढ़ती रही होगी। अभी

भी वह गुनगुना रही है। पास ही चन्दन, सिन्दूर तथा चमकीली अभरक पड़ी है। रात भर मेरा शृंगार करती रही। आंखें खोलते ही, उठाकर चुम्बनों से भर दिया। तंग हो गया। उठकर आइने में मुंह देखा। बुरी तरह से हंसी आ गयी। भारत-नाट्यम् के नृत्यकारों की तरह सारे ललाट पर बड़ी महीन चित्रकारी की गयी थी। गीले चन्दन पर चमकीली अभरक लेपी गयी थी।

कहा, राम आज तेरी वर्षगांठ है। पन्द्रह अगस्त है आज ! हिन्दुस्तान की आजादी की सालगिरह के साथ तेरा भविष्य जुड़ जाय, अन्तःकरण से यही आशीष देती हूँ।

-शृंगार तो खूब हो गया। अब जल्द भी निकाल दो। पन्द्रह अगस्त के इस नायक को भी लोग देख लें।

-मैं भी इन्तज़ाम हो जायगा।

-इतनी गंभीरता से मत कहो जी।

-तुम्हारी इच्छा पूरी हो, यही तो चाहती हूँ।

-तो नहाऊँ, धोऊँ नहीं ? ऐसा ही बना बैठा रहूँ ?

-बिलकुल ऐसे ही।

-अच्छी बात है। चाय लाओ।

-जो हुकम। अभी लायी, साहब।

प्रथम प्रसादी की ओर ध्यान गया। लगा कि बड़ी भारी तैयारी की गयी है। बड़ा सा भगोना स्टोव पर धमा हुआ है। पूछा, 'क्यों जी, आज दिन भर चाय ही पीनी होगी ?'

-यहाँ जो कुछ है, वह सब आपके लिए ही है, ऐसी धारणा आप जाने कैसे कर लेते हैं ? गुलाम को औरों की भी तो सेवा करनी पड़ती है। मेहमान आयेंगे, तो बिना चाय पिये ही चले जायेंगे, क्यों ?

-ओहो, तो मेहमान भी आयेंगे ! गोंया, पूरी दुर्दशा न हो जाय, तब तक जन्म-दिवस मनाने का मतलब ही क्या हुआ ? देख लो नीला, जो कोई ऐसी-वैसी बात हुई, तो जान लेना, जंगली आदमी हूँ। पीढ़ंगा।

-बहन को मारने पर थोर में हाथ उठा जाते हैं।

-ऐसा होता तो अभी तक उनमें काँटे भी लग गये होते।

चाय की प्याली देते हुए, कहने लगी, 'सच जल्द निकालने लायक बने हो। इतने खूबसूरत लगते हो। सुनो राम, अब तुम छोटे नहीं हो। आज से

दादी बनाना शुरू कर दो। कहीं-कहीं ऊग आने वाले ये छोटे-छोटे बाल कितने भेड़ लगते हैं।

ठुड़ी पर हाथ फेर कर देखा। हमेशा की तरह छोटी कैची मांगी।

-अब उसमें काम नहीं चलेगा। यह रहा रेजर, यह रहा ब्लेड। ब्रश और साबून भी हैं। कहो तो हजामत कर दूं।

-दादी बनाने में लज्जा आती है।

-सो तो आयेगी ही। जल्दी करो। मुझे बहुत काम करने हैं।

-लेकिन मेरा श्रृंगार? मैं तो किसी काम का नहीं रहा।

-देखो राम! मेरे यहां रहते हो। कहूं, वह करते जाया करो। व्यर्थ की बहम नहीं। चलो उठो।

उठ बैठा। ब्रश से साबुन लगाने में अजीब सी गुदगुदा हां रही थी। कहा, गुलामों के इस देश में, हे प्रभु, लिंकन की मख्त जरूरत है।

-चलो, चलो। जल्दी करो।

-हे प्रभो, ये नहीं जानते, कि ये क्या कर रहे हैं। इन्हें माफ करना।

-जैसा कहूं, वैसा करते चलो, चुपचाप।

-गरीब मजबूर है।

-अब बस।

-दुखी हूं, भुगत जो रहा हूं।

-राम, आज तुम बिल्कुल बच्चे में लग रहे हो।

-सो तो होगा ही, दादीजी।

स्त्री को शिशु मिल जाय, तो उसकी सात पीढ़ी पूर्व की, और चौदह पीढ़ी बाद की मोक्ष पा जाती हैं।

-चलो तुम्हारी मुक्ति तो हुई। पीढ़ियों का दिग्भाव देखने वाला देखेगा।

तभी चार-पांच महिलाओं का आगमन हुआ। सब को तो नहीं जानता। लेकिन उनमें मृणाल भी थी, यह देख लिया। रामलीला के सुसज्जित पात्र की वेशभूषा में अपने को पाकर लाल हो आया। दोनों हाथों में मुंह छिपा कर जोर से पूछ बैठा, 'नीला, अब क्या कहें?'

सब के सब बुरी तरह खिलखिला उठे।

मृणाल ने आगे बढ़कर दोनों हाथ अलग कर दिये। मैं चिढ़ गया, कहा, नीला तुम जितनी दुष्ट हो, उतना प्रतापी रावण भी नहीं था।

“विजेता राम के सामने रावण की ही तो सेना मारफा मांगने के लिए आया। अनजाने में आपके दर्शन करने की जो भृष्टता हम में हो गयी है, उसके लिए क्षमा कीजिये।” —मृणाल ने हंसते हुए कहा।

फिर धीरे से कहा, कल नाराज हो गये थे ?

मैंने सिर हिला दिया, ‘नहीं’ !

नीला चाय परोसने में व्यस्त हो गयी।

मृणाल कहने लगी, इस रूप का फोटो उतार रखना। कौन जाने फिर कर्मा इतने खूबसूरत लगोगे या नहीं।

पुरुष स्त्रियों के सौन्दर्य की तारीफ़ करे, ऐसा तो अस्वाभाविक नहीं। लेकिन स्त्री पुरुष की सुन्दरता की घोषणा करे, यह अदभुत बात अवश्य है।

कहा, अपना रूप कल देख आया हूँ। वैसा आज नहीं है। फिर कर्मा वैसा होगा, जन्म-पत्री देखकर कोई ज्योतिषी ही शायद बता सके।

—यह तो नाराजगी की बात हुई। मेरी पेंटिंग्स की तो नीला भी कद्र करती है। यही चित्र यदि किसी और के लिए बनाया होता, तो न जाने कितना पुरस्कार और नामवरी हासिल हो गयी होती।

—पुरस्कार और कीर्ति प्राप्त हो, ऐसी प्रार्थना तो भगवान से कहेंगा; लेकिन तुमसे एक बात पूछना चाहता था। कल तुम चली गयीं, इसलिए कह नहीं सका।

नीला ने टोका, ‘बातचीत आवश्यक माध्यम, ‘थ्रू प्रोपर चैनल प्लॉज।’

मृणाल ने नीला की ओर देख कर कहा, इजाजत दो।

—तथास्तु।

—थ्रू प्रोपर चैनल, यह निवेदन है।

कह कर, उसने पास ही पड़ा कागजों से लिपटी हुई एक पेंटिंग नीला के सामने रख दी। नीला ने खोल कर देखा। कल जो चित्र बनाया गया था, वही प्रस्तुत था।

मैंने गंभीर होकर पूछा, मृणाल एक बात बताओ, तुम्हारी यह तीक्ष्ण, पैनी और गंभीर कला किस काम आयेगी।

मेरे आस पास जो हैं, वे खुश हो जायं, यही सार्थकता है। इतना ही पर्याप्त है।

--लेकिन जो अपने पास हैं, उनकी संख्या कितनी थोड़ी है, यह जानती हैं!

--अभी तक नहीं जान सकी। जरूरत भी नहीं पड़ी।

--जिस दिन एकाएक यह सवाल गंभीर रूप में उपास्थित हो जायगा, उस दिन क्या जवाब दोगी? यही पूछता हूँ।

--जरूरत आने तक उन्हें नाप-तौल रखूंगी। अकेली तो सोच ही नहीं पाती। जिन्हें सोचने, चिन्तन करने की दिव्य--दृष्टि भगवान ने दी है; जो वे देखेंगे, जो वे सोचेंगे, मैं उनका अनुकरण ही करूंगी। वैसे ये भाव--चित्र यदि थोड़ा से लोगों को, उनकी संख्या भले कितनी ही कम क्यों न हो, कितनी ही संक्षिप्त क्यों न हो, विशिष्ट चिन्तन की प्रेरणा दे सके, तो मेरे लिए कम संतोष की बात नहीं होगी।

--लेकिन तुम्हारी इस कॉन्सेन्स [अन्तर्बुद्धि] को समझने वाले किनने होंगे? उंगलियों पर गिने जा सकें, इतने। असाधारण पर ही निदर्श आधारित हो जाय, तो न वह व्यापक हो सकता है, न ही उपयोगी।

--मैं तो समझती हूँ, इसका घेरा सीमित रहे, यही काफी है। इससे अधिक की जरूरत भी नहीं।

--जो असाधारण नहीं, साधारण हैं, उनके लिए तुम भी व्यर्थ नहीं हो?

--उनके लिए काम आने वाले लोग अलग किस्म के होते हैं। बहुत कम। मैं तो उनमें नहीं हूँ। यामिनी राय बहुतों को अच्छे लगते हैं। लेकिन सारे आर्टिस्ट उनको नहीं भी लग सकते।

--बात साफ नहीं मृणाल। कॉन्सेन्स [अन्तर्बुद्धि] को समझने का दावा करने वालों को भी देखा है। वे चित्र खरीद सकते हैं। देखकर प्रशंसा भी कर सकते हैं और सहज ही भूल भी जाते हैं।

--यह आप्रह तो ठीक नहीं, कि किसी कलाकृति को व्यक्ति हमेशा ही स्मृति में संजोये रखे।

--यह आप्रह नहीं, ताकत होती है, मृणाल। इसे तुम चाहे व्यर्थ मानों, लेकिन मेरी नजरों में इसका मूल्य है।

—पॉइण्ट ऑफ ऑर्डर—नीला ने कहा, 'यह डिबेट नहीं !'

चुप हो गया ।

नीला ने मेरे लिए नये कपड़े निकाल रखे थे । आदेश दिया, बाथ-रूम में जाकर बदल आऊं ।

कपड़े उटाकर बाहर चला आया । यही सोचता रहा, कि मृणाल और मेरे बीच कैसा अजीब-सा आकर्षण है यह ? कला तो उसका अधिक सचेष्ट प्राण है ! जो रास्ता नहीं जानती, वहां जाने का विचार भी नहीं करती । मैं अनजानी मंजिल की ओर जाने वाला, रास्ते के बारे में जानने के लिए अभी तक इधर-उधर भटक रहा हूं ।

वापस आया तो देखा वे सब जाने किस बात पर खूब हंस रही हैं ।

देखा, केवल मृणाल की बहन ही चुपचाप बैठी, सबकी बातें अप्रभावित भाव से सुन रही थी ।

नौ :

व्यक्तित्व के बारे में निर्णय करने का आधार तुलनात्मक ही होता है ।

अब तक अपने आप को 'कलाकार' समझ कर संतोष कर लेता था । लेकिन मृणाल से मिल कर लगा, अभी तक इतना परिपक्व नहीं हूं कि इसे अपने व्यक्तित्व का केन्द्र-बिन्दु कह सकूँ । लगा, कि इस एक लड़की के मामले में तो बौद्धिक श्रेष्ठता के सारांश के सम्मुख ही टिक पाया हूं, और न स्वयं-चैतन्य कला के प्रमाण में ही !

मृणाल ने मुझे बुरी तरह से हिला दिया ।

समझता हूं, कि नीला द्वारा खड़े होने के लिए जो थोड़ी-सी जमीन प्राप्त हो गयी थी, वहां बीज अंकुरित भी नहीं हो पाया था, कि किसी चंचल वानर ने आकर 'अच्छा है या बुरा,' यह देखने के लिए उखाड़ डाला हो । फिर भी, बीज बिलकुल जड़ नहीं था; इसलिए न तो मैं मर ही गया, न ही मृणाल के

सामने जोर देकर प्रतिवाद ही कर सका । सिर्फ इतना ही जान सका, कि जमीन में उखड़ गया हूँ । आधार में कोई मौलिक और गंभीर परिवर्तन चाहिए ।

चिन्तित था, कि यह जो फिर से नयी जमीन पाने की और अंकुरित होने की आवश्यकता महसूस कर रहा हूँ, उसमें कितना अर्पा और कितनी साधना लगेगी ? प्रवाह में अत्यन्त साधारण बन कर जिस प्रकार से बह रहा हूँ, उसमें स्थायी और वैज्ञानिक परिवर्तन आवश्यक है । तभी किसी उज्ज्वल भविष्य की आशा हो सकेगी ।

मिक्कुड कर किसी छोटी-मोटी सर्विस में छिप जाऊँ, यहाँ व्यावहारिक लगा ! नीला ने उस दिन कहा था, अर्थ की आवश्यकता को बिना मान्यता दिये, यदि अपनी अहमन्यता को ही विराट रूप में देखने की चेष्टा करूँगा, तो किसी समय पतित होकर गिर पड़ने की संभावनाएं रहेंगी ही । सच भी था, अर्थ है ही ऐसी चीज, कि दो कदम चलना उसके अभाव में मुश्किल हो जाय । जीवन भर का यही तो अनुभव है ।

चाहता था, श्री जोगलेकर से मिलकर सर्विस की बात तय करना । लेकिन स्कूल के सामने से गुजरते समय अचानक ही दूसरे दिन मृणाल मिल गयी । कहने लगी, 'घर चल कर साथ ही भोजन करना होगा ।' निमंत्रण में आग्रह, मनुहार, बीती बातों को भुला देने की प्रार्थना, सब कुछ था । व्यतीत को याद कर वह दुखी हो, और यह देख कर मैं दुखी होऊँ; यह नहीं चाहता । इसलिए, 'हाँ' भर ली । नीला के लिए निमंत्रण मांग नहीं सका, पर बिना उसके वहाँ जाना कुछ अजीब-सा ही लगा । लेकिन गया । मीमांसा नहीं कर सका, कि जो किसी भी मायने में उससे अधिक महत्व नहीं रखता, उसके प्रति वह क्यों इतना सम्मान प्रकट कर बैठती है ?

मृणाल को देखकर हीनता महसूस करता हूँ, यह स्पष्ट रूप से जानते हुए भी उसके यहाँ जाकर, अतिथि के रूप में उसके पारिवारिक सम्बन्धियों से मिलकर प्रसन्न ही हुआ ।

मृणाल ने जितना स्वागत सत्कार किया उतना ही उसकी माँ, बहन तथा भाई ने भी । यह महाराष्ट्रीय परिवार सम्पन्न है, और सुशिक्षित भी । सरस्वती और लक्ष्मी दोनों की कृपा अनायास ही जैसे यहाँ सम्मिलित हो गयी हो ।

यह तो बाद में मालूम हुआ कि मृणाल मेरे प्रति अत्यन्त अनुरागमयी थी। वैसी तो नहीं, जैसी नीला है। वैसी भी नहीं, जैसी मां-अन्नपूर्णा। बल्कि, किसी और किस्म की। अनुभव का यह स्पर्श होना भी सम्भवतः आवश्यक था। इसीलिए परिचय का यह रूप भी सामने आया। अन्यथा किसी क्षणिक विंगम का आना, अथवा न आना कोई खाम महत्व नहीं रखता।

भोजन करने डाइनिंग टेबल पर सब साथ बैठे। मृणाल की मां ने बहुत-सी बातें पूछ डालीं। उस समय तो वह परीक्षा बुरी ही लगी! लेकिन, अब जानता हूँ कि मद्पात्र को अच्छी तरह से परखना उन्होंने यदि आवश्यक समझा हो, तो ठीक ही था।

मृणाल के भाई दिगम्बर मे अधिक प्रभावित नहीं हुआ। वे खामोश रहने वाले अत्यधिक रिजर्व्ड प्रकृति के आदमी थे। शिष्टाचारवश जितनी बात करनी चाहिए, उतनी ही उन्होंने की। इस प्रकार मौन अथवा रिजर्व्डनेस प्रकट करने का जो प्रयास वे नाटकीय ढंग से कर रहे थे, वह इतना अधिक डेमोंस्ट्रेटिव [दिखावटी] था कि कुछ अस्वाभाविक या लगने लगता।

खाना खाने के बाद मृणाल के साथ उसके कमरे में चला गया। उसकी बहन सोना साथ थी। एक-आध साल ही उसमें छोटी होगी। लेकिन अत्यधिक गंभीर। बहुत कम हँसती। लेकिन जब हँसती, तो मुक्त रूप से। इसलिए कुछ अजीब रहस्यमयी सी लगी।

मृणाल ने परिचय कराया, वह शास्त्रीय-नृत्य [क्लासिकल डांस] जानती है। आप्रह किया, कि नृत्य करें; तो उसने स्वीकार कर लिया। ग्रामोफोन रिकार्ड की धुनों पर उसके पैर थिरकने लगे। शरीर का प्रत्येक भाग अभिव्यक्ति का केन्द्रस्थल बन गया। इससे पूर्व मैंने कभी किसी का नृत्य इतने करीब से नहीं देखा था। शायद इसीलिए वह मुझे अपूर्व सुन्दर, रसयुक्त और लयपूर्ण लगा। सोना की प्रशंसा के लिए जो भी शब्द संजोता, वे कुछ कम से लगते। इसलिए नृत्य के समाप्त हो जाने पर एक शब्द भी कह नहीं सका। मुग्ध नेत्रों से देखता ही रह गया।

नृत्य के बाद वास्तव में जैसे वह बहुत प्रमुदित हो गयी। सोफे पर बैठकर सुस्ताने लगी। मेरी ओर देखकर कहा:-‘भाई साहब, आपके चित्र तो कुछ स्थिरता रखते भी हैं : पर इस नृत्य कला में तो कहीं भी स्थिरता नहीं। बल्कि चंचलता न हो तो यह जड़ हो जाय। प्रस्तुत कला के प्रशंसक

चाहे जितने हों, लेकिन नृत्य की अभिव्यक्ति को जरा भी याद रख पाने वाले कितने हैं ? याद आये भी, तो वह जब चाहे दृष्ट्य हो, सुलभ हो, ऐसी बात नहीं । विज्ञान द्वारा दी गयी सिनेमा की सुविधा भी अपर्याप्त ही है ।

‘फिर इसे क्षण-भंगुर और सीमित क्षेत्र की चीज ही मानने लगूँ तो रस, स्फूर्ति और लय के दर्शन जिन क्षणों में प्राप्त हो जाते हैं, वे कैसे होंगे ? सवाल यही है, कि कोई श्रेष्ठ क्षण क्यों स्थूल रूप में स्थायित्व प्राप्त कर ही ले ?’

‘रहने दे सोना’ मृणाल ने कहा ‘आज तक जिन्हें तुम्हारे इस रस, लय और स्फूर्ति के दर्शन नहीं हुए थे, उनका जीवन अक्ररथ नहीं गया था ।’

सोना इस तर्क से वच्चों की तरह रुठ कर कहने लगी, ‘कौन कूप-मंडूक अपने कूप को श्रुति का सर्वश्रेष्ठ आश्रम और स्वर को नादब्रह्म कहे, और इसी आधार पर दूसरों ही आलोचना करे, तो सौन्दर्य के किसी भी रूप की कोई हानि नहीं होने वाली । उसके अभिषाप चाहे कितने की कठोर और बुलन्द क्यों न हों !

लगा कि जो बात कल विवाद बन कर समाप्त हो गयी थी, उसका ही कोई हिस्सा अपनी दुम यहां भी हिला रहा है । तभी सोना इतना साहस कर सकी, कि घर आये अतिथि को अप्रत्यक्ष रूप से इस प्रकार बिना भूमिका के उपदेश दे । समझ गया, संकेत मेरी ओर है । लेकिन व्यवधान नहीं डाला । मेरे पास कोई अनुकूल, सम्बद्ध उत्तर था भी नहीं । तर्क करने की प्रवृत्ति भी नहीं हुई ।

‘तू जो कुछ कहती अथवा करती है, तेरी उस इच्छा से किसी को कोई लेना-देना नहीं । पर वह सबके लिए आधार रूप में मान्य हो जाय, यह तो जिद्द की बात हुई । मान लिया कि हम कूप-मंडूक हैं । यह भी स्वीकार कर लें, कि तू ने सौन्दर्य के श्रेष्ठतम रूप से सुसज्जित संसार देख लिया है । लेकिन ऐसा तो नहीं कहेगी, कि सौन्दर्य के प्रत्येक अंग की अन्तिम स्थिति तू ने देख ली है । फिर एक छोटा कूप-मंडूक हुआ, दूसरा कुछ बड़ा । रहे दोनों मंडूक के मंडूक ही । —मृणाल मराठी में ही कहने लगी ।

मैं बैठा सोचता रहा, यह बम्बई भी अजीब नगरी है ! यहां पता नहीं आदमी के दिमाग में कितनी भाषाओं की खिचड़ी पकती रहती है । जाने कितने प्रकार के सद्बिचार किंवा कुबिचार आपस में अपनी-अपनी हैसियत से निरन्तर संघर्ष करते रहते हैं । हिन्दी अंग्रेजी के अतिरिक्त गुजराती मराठी भी

बम्बई के जीवन में घुलमिल जाने वाले लोग जान ही जाते हैं। और यह दावा भी कोई नहीं कर सकता कि बम्बई में रहने वाला व्यक्ति किसी एक ही भाषा को अधिकृत रूप से बोलता है। कम से कम मैं जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आ सका हूँ, उन सबकी भाषा में इन चारों भाषाओं का अजीब-सा मिश्रण देख चुका हूँ। इसलिए यहां अपनी विगत स्मृति के आधार पर जो कुछ भी कहूंगा, वह इन भाषाओं का अनुवाद ही होगा। फिर यह आत्म-कथा है, सो स्वाभाविक रूप से इन सारी बातों में मेरी खुद की भाषा ही तैर आयी है। यह नवीन बात नहीं। परम्परानुगतता है।

सोना अंग्रेजी में कहने लगी, 'अकबर ने वीरबल से पूछा, यह एक लकीर है, बिना किसी तरह का परिवर्तन किये, इसे छोटी कर दो। वीरबल ने पाम ही एक बड़ी लकीर खींच दी। बिना किसी परिवर्तन के पहली लकीर छोटी हो गयी। तुलना होगी, तभी तो कौन ऊंचा, कौन निम्न, इसका निर्णय हो सकेगा। ऊंचाई जिन्होंने प्राप्त नहीं की है, वे नीचाई को देख कर ही अपनी स्थिति को जान सकते हैं।'

मुझ से न रहा गया, पूछा, 'मवाल सिर्फ परिणाम का ही नहीं है, उसके फल का भी है। नृत्य-कला में प्रशंसा के अतिरिक्त मुझे कुछ दिखायी ही नहीं देता। इसलिए कि इससे अधिक कुछ जानता नहीं। सो मेरी प्रशंसा अथवा आलोचना दोनों एक ही स्तर की मानी जायगी। आप ही अपने बारे में अधिक जान सकती हैं, इसलिए सहज जिज्ञासावश पूछता हूँ, कि आप कला के इस प्रदर्शन द्वारा दर्शक से क्या अपेक्षा करती हैं ?

—कला का एक मात्र जो उद्देश्य होता है, वही। आनन्द, चिर आनन्द ! जीवन की जिन रागनियों में आनन्द छिपा हुआ है, उसे मूर्त रूप देकर प्रस्तुत कर देना अपने आप में कम महत्वपूर्ण नहीं।

—आनन्द की बात साफ नहीं हुई सोना। क्षणिक सुख के विलास को आनन्द कह देना तो गलती ही होगी। मान लीजिये, किसी ने थिएटर अथवा फिल्म में नृत्य देखा। यह सौभाग्य तो कम लोगों को ही नसीब हो पाता है कि वे मेरी तरह, आज की भाँति एकान्त रूप से, अधिकार पूर्वक देख सकें। जो भी हो, क्या ऐसा विश्वास किया जा सकता है कि नृत्य की श्रेष्ठतम मुद्राओं

को देखकर, दर्शक अन्य मारी चीजों को भूल कर, प्रस्तुत आनन्द को संचित मान कर संतुष्ट हो जायगा।

सोना ने कुछ ऊँचे स्वर में कहा, 'आनन्द की ऐसी फिलासफिकल टेढ़ी-मेढ़ी व्याख्या करके जो उसे उधेड़ डालना चाहते हैं, उनके प्रति मुझे कोई आपत्ति नहीं। अष्ट-मिद्धि प्राप्त करने के पूर्व भी व्यक्ति निरानन्द हो सकता है; और उसके बाद भी। रही कला की बात। सो यह तो व्यक्ति के ग्रहण और उसके सौष्टव्य से सम्बन्धित चीज है। जो इसे जिम मात्रा में प्राप्त कर सकता है, उसके लिए वह उतना ही बड़ा वरदान है। बाद की अवस्था की कल्पना करके, उसे क्षुद्र कह देना, तो किसी भी आदमी को ख्यामखाह अपमानित करना ही है। इससे मानवीय विकास की उम्मीद नहीं की जा सकती।'।

सोना के इस वक्तव्य से खामोश बैठी मृणाल ने मेरा पक्ष लेकर तर्क प्रस्तुत किया:—तुम्हारे विचारों को मान लेने में कइयों को लाभ हो सकता है। लेकिन इनका प्रश्न यह है, कि तुम्हारी ग्रहण-शक्ति की शर्तों को स्वीकार करने में जो अपमर्त्य हैं, उन्हें भी यह कला लाभ दे सकती है क्या ? जो 'शास्त्रीय' के हिज्जे भी ठीक से नहीं जानते, तुम्हारी यह कला उन्हें लाभ पहुंचा सकती है ? उनके लिए भी क्या कोई कण्ट्रीव्यूशन [देन] है ? मान लेने में कोई हर्ज नहीं, कि नृत्य आनन्द के विकास की चरम सीमा का उद्बोधक अंग है—कि आदमी मुखी हो, तो नाचे, गाये। मुखी होने के लिए जो अनुप्राणित कर सके, वह यह नहीं है। और नहीं है, तो जिद् से प्रमाणित हो भी नहीं सकेगा।

मैंने सोना का बचाव किया, 'मृणाल, व्यक्ति की सीमा और शक्ति का भी ख्याल रखना होगा। यह सौचना तो हंसी की बात होगी कि सोना का नृत्य सारी साधारण जनता के लिए भी सुलभ हो। चाहे इससे कितना ही बड़ा राष्ट्रीय हित क्यों न होता हो। और हर कला राष्ट्र-हित अथवा बड़ी संख्या से ही शुभ मानी जाय, मार्थक मानी जाय, यह पैमाना भी स्थायी रूप से सही नहीं।'।

सोना खुद ही बहुत कुछ कहने को तैयार थी, इसलिए मेरे तर्कों की ओर बिना ध्यान दिये ही कहने लगी, 'यदि ऐसा करना ही पड़े कि साधारण जनता को भी, यह असाधारण रूप से क्षणिक अथवा स्थायी आनन्द प्रदान कर सके; और यह भी मान लें, कि मुझ में शक्ति और सामर्थ्य भी है;

तो भी, कला की विवेचना-हीन 'भंसों के आगे बीन बजाने' का गौरव न हासिल किया जाय, तो क्या बुरा है जी ?

तुमने ठीक कहा सोना, मैं बोला:—'जिन्होंने इस बात को स्पष्ट रूप से संक्षिप्त क्षेत्र में स्वीकार कर लिया है। वे सचमुच बहुत सुखी हैं। प्रश्न तो उन अभागों का है, जो अपनी कला को, अपने प्राणों को, समाज की प्रगति के नाम पर न्यौछाकर करने को तैयार हैं। दुखी तो वे हैं। समस्या उन्हीं की अधिक चिन्तनीय है।

सोना ने मृणाल की ओर कुछ ऐसी नजरों से देखा कि वह चिढ़ कर मुंह फेर कर चुप हो गयी। एक क्षण के लिए मौन निःस्तब्ध हो गया। एकाएक वह उठ खड़ी हुई। कहा, 'मैं चलती हूं, काम है। जाते समय मुझे भी साथ ले चलना।

अंतिम बात कहते-कहते, जैसे वह काली हो गयी। उदासी बिजली की तरह तड़क कर विलीन हो गयी। वह एकाएक मुड़कर तिछीं होकर तेजी से बाहर चली गयी। दरवाजे पर लगा हुआ मोटा पदो हिलता रहा।

कमरे में मृणाल के साथ अकेला रह गया।

मृणाल ने कहा, कल साथ थी। वहां तो चुपचाप बैठी रही। घर आने पर माँ और भैया से बात कर रही थी, तो वहां भी दाल भात में मूसलचंद की तरह बहुत कुछ बक गयी। कसर यहां भी नहीं छोड़ी।

दवां हुई सर्द आह लेकर उसने कहा, '—खैर। राम, इमे मैं बहुत प्यार करती हूं।'।

इस स्पर्शाकरण का अर्थ बहुत दिनों के बाद समझा।

मैंने कहा:—मृणाल सौभाग्य है तुम्हारा, कि तुम ऐसे परिवार में हो। ऐसे म्लिग्ध वातावरण और सम्पन्न आजादी में रहती हो। सच, ईर्ष्या होता है।

मृणाल ने धीरे से, रुक-रुक कर कहा, इस परिवार में एक ही आदमी का कसर है। उसके बिना एक बड़ा भारी गेप [रिक्तता] है।

—गेप ?

—तुम इस परिवार को पसन्द करते हो, राम ?

—करता हूं।

—मुझे सारे अपराधों के लिए माफ कर सकते हो ?

जैसे आकाश में उड़ रहा हूँ। इससे अधिक कहने का अवकाश ही नहीं मिला, 'हाँ। करता हूँ।' -

-राम !

कह कर वह रुक गयी। जैसे सर्ती को अपना अन्तिम वक्तव्य मृत-लोक में रह जाने वाले व्यक्तियों को सावधानी के साथ, धीरज के साथ, तौल-तौल कर देना होता है, उसी तरह से उसने कहा, 'राम तुम्हें स्थायी रूप से अपने पास—विश दू मेरी यू !

विवाह का ऐसा प्रस्ताव किसी भीरु के सामने इस रूप में प्रस्तुत नहीं हुआ होगा। जिससे मन ही मन डरता रहा हूँ, उस पर अधिकार जमाकर 'हाँ' कह दूँ, यह हो तो सकता था, लेकिन हुआ नहीं। उत्तर नहीं ढूँड सका, तो सोचने के लिए समय माँगा। पूछा, 'क्या मतलब ?'

-राम, कुछ ऐसे सम्बन्ध भी होते हैं, जिन्हें स्वीकार करने के लिए व्यक्ति बाध्य है। इसे आग्रह कहो।

-सो ?

-सोचती हूँ, बिना भाववेश के, और यह जान कर कि मैं क्या हूँ, और मुझे क्या चाहिए, मैं रोमांस की प्रवंचना में नहीं पड़ना चाहती। इसलिए फाइनली [अन्तिम रूप से] जानना चाहती हूँ, कि तुम्हारी स्वीकृति का अर्थ क्या विवाह हो सकता है ?

-एक सम्बन्ध नीला से है, कि उसका मुझ पर अखण्ड अधिकार है। जैसा तुम कह रही हो, वैसा आग्रह भी है। उससे बिना पूछे तुम्हारे बारे में इतनी गम्भीर सलाह नहीं दे सकूँगा।

-यही जानना चाहती हूँ राम, कि तुम्हारी अपनी राय में, मैं तुम्हारे लिए उपयुक्त हूँ या नहीं ?

चुप होकर सोचने लगा। इजाजत चाही, मुझे विचार कर लेने दो।

एक दिन बिना भविष्य की रूपरेखा जाने, प्रतिज्ञा कर गया था। उस दिन सोच रहा था, कि संसार की श्रेष्ठतम सुन्दरी के उपहार रूप में प्रस्तुत होने पर भी कह सकूँगा, 'मैं इसे भी त्यागता हूँ।' लेकिन आज देखता हूँ, कि इस त्याग में जय नहीं, पराजय है। वैभव नहीं, दरिद्रता है। आत्म-तिरस्कार है; समर्पण और अर्चना का अपमान भी।

किसी दिन जो अछूता निर्णय ले बैठा था, उस पर रुढ़ दृष्टि से विचार कर, निदर्श निकालना मेरी अपनी नजरों में शोभास्पद नहीं। लेकिन यह एक क्षण के लिए भी भूल नहीं सका कि अभी तक अपने आप को संभाल नहीं पाया हूँ। बंजर भूमि में पड़ा बीज अकारण ही जायगा।

इसीलिए समस्त प्रलोभनों के बावजूद भी अपने साथ छल नहीं कर सका। यही कहा, 'इस प्रश्न पर स्वीकारात्मक दृष्टि से विचार करने के लिए मेरे पास एक भी कारण नहीं है, मृणाल। तुम प्रिय हो, इसे जीवन के अंतिम दिन भी नहीं भूल सकूंगा। लेकिन इस समय, मैं उस दृष्टि से विचार नहीं कर सकता। अभी और भी मुझे बहुत कुछ करना है। वह अधिक.....!'

निर्णय को सुनने का धीरज मृणाल में था। इसलिए अपनी व्यग्रता को फलक झपकते ही वह छिपा गयी।

तभी सोना आ गयी। दोनों को मौन देखकर, हंसकर कहने लगी, 'हे प्रभो आनन्ददाता, ज्ञान इनको दीजिये।'

मैंने कहा, चलें ?

मृणाल उठ खड़ी हुई। धीरे से कहा, अच्छा, नमस्कार।

सोना हम दोनों की ओर देखती रही।

मृणाल ने कहा, कार का इन्तजाम करवा देती हूँ। छोड़ आयेगी।

—नहीं। कोई जरूरत नहीं। पैदल चला जाऊंगा।

सोना की ओर मुड़ कर देखा। कुछ पीड़ा-सी हुई, कहा, सोनाजी आज आपसे पहली बार मिला। मिल कर सुखी ही हुआ। नमस्कार करता हूँ, कभी कहीं मिल जाऊँ, तो इस क्षणिक मिलन के सहारे ही पहचान लीजियेगा।

मुड़ कर मृणाल की ओर देखना चाहा, लेकिन सिर झुका कर तेजी से सीढ़ियाँ उतर गया।

समझता हूँ, उस दिन सोना को जितना दुख हुआ होगा, उतना सम्भवतः मृणाल को भी न हुआ हो।

कारण तो बहुत दिनों के बाद जान सका।

इसलिए सह-पात्रों में नीला के पश्चात् भी किसी को धट्टाँजलि चढ़ायी जा सकती है, तो इस महापात्रा, महाभाग सोना को ही।

कला का ऐसा उपयोग किस प्रकार हो कि मैं युग-पुत्र साबित हो सकूँ, इसकी राह अंतिम रूप में खोज नहीं सका। लेकिन यह निश्चय अवश्य था, कि लक्ष्य के प्रति ईमानदार रह कर, अन्त में एक न एक दिन मंजिल हासिल कर ही लूँगा।

खाना खाने के बाद, घर से निकला। कल बहुत थोड़े में बहुत बातें हो गयीं थीं। उमी पर विचार कर रहा था। अचानक मृणाल की याद आयी, कि उसे एक बार देख लूँ। कहूँ, कि 'कल जो कुछ कहा था, वह अंतिम नहीं था। तुम इन्तजार करो, मैं सोचना चाहता हूँ। अनुकूल निर्णय कर सकूँ, इतना अवसर दो।'।

लेकिन यह अच्छा नहीं है, ठीक नहीं है, यही बारम्बार लगता। इसलिए जोगलेकर के घर की ओर चला गया। वहाँ ताला बंद देखा तो लौट आया। घर लौटने के बजाय स्कूल जाकर लायब्रेरी में बैठूँगा, यही संकल्प लेकर वहाँ गया। बैठा, कुछ पुस्तकें पलट रहा था कि मृणाल की नजरों में आ गया। देखा, तो पास आयी। जैसे कल कुछ हुआ ही न हो, कहने लगी:-आओ, चाय पीयें।

नहीं चाहता कि मृणाल मेरे लिए वह सब करे, जो मैं प्रत्युत्तर में नहीं कर सकता। इसलिए उसके साथ नहीं गया। कारण बताने में कुछ संकोच भी था। अच्छा यह हुआ कि उसने विवाद नहीं किया।

कहने लगी:-राम, तुम्हें बताने के लिए एक पेंटिंग लायी हूँ। देखोगे?

विशेष प्रवर्तन न होने पर भी कहा:- 'हां।'।

अपनी फ्लास से पेंटिंग उठा लायी। ओइल-कलर से बना हुआ बड़ा-सा चित्र था। अखबारी कागज को हटाते हुए बोली:-तुम पसन्द कर लो, तो प्रेमिंग करवा दूँ।

देखा। चित्र सुन्दर था। शीर्षक था, 'क्रौंच-वध।' युगल-क्रौंच वहेलिये के तीर से घायल हो गया था। महाकवि बाल्मिकी नेत्र मूंदे राम का ध्यान कर रहे हैं। वहेलिया श्राप-प्रस्त भयातुर-सा आदिकवि की ओर देख रहा है। राम

जैसे चरित्र-नायक को अमर कर देने वाले वाल्मिकी, अपनी कल्पना को अमरत्व प्रदान कर सके, लेकिन उम नर-कौंच को कवि की महानतम कृपा भी जीवित नहीं कर सकी, सो नहीं ही कर सकी। यही चित्र का भावार्थ था।

-मृणाल द्वारा इस चित्र का मुझे दिखाया जाना।

-एक-एक रेखा की भाषा इतनी स्पष्ट!

-इस माध्यम से मेरे लिए कौनसा संदेश है?

-क्यों नहीं, वह आदमी की विवशता को एक सीमा तक स्वीकार कर लेता?

-आदमी, आदमी है। वह देवता नहीं हो सकता—ऐसा देवता, जो 'है' को 'नहीं' बना सके, और 'नहीं' को 'है'।

-नर कौंच को जीवित न कर पाने की महाकवि की अमरमर्थता के कारण क्या उनके महाकाव्य की सिद्धी को स्वीकार नहीं किया जायगा?

-अपनी अमरमर्थता को देखकर यदि वे चुप बैठे रहते, और उम कृपा से प्रस्तुत महाकाव्य का निर्माण नहीं होता, तो उनका क्रोध अधिक दयनीय हो जाता। श्राप मात्र ही तो पर्याप्त नहीं। उमका सृजनात्मक, रचनात्मक उत्तर भी तो चाहिए!

चित्र को हाथ में लिये काफी देर तक गौर में देखता रहा।

कहा, 'मृणाल यह मांगता हूँ। दो। कुछ चीजों को भूलना नहीं चाहता। यह उनकी याद दिलाता रहेगा।'

कृतित्व की प्रशंसा से प्रसन्न ही हुई। बोली:-तुम्हारे लिए ही है, दूँगी, लो!

चित्र को वापस कागजों में लपेट, उम नमस्कार कर, अभिवादन स्वीकार कर, स्कूल से बाहर निकल आया।

वहाँ से अज्ञपूर्ण के घर गया। दरवाजा बंद था, लेकिन ताला लगा हुआ नहीं था। घर पर हैं, यह मालूम हो गया। धंटी बजायी तो किमी ने धीरे-से दरवाजा खोल कर झाँका। मेरी ओर गहरी दृष्टि में देख कर पूछा:- क्या है?

कहा, राम हूँ। साहब से मिलना चाहता हूँ।

वापस दरवाजा बंद करके उसने यही दुहरा दिया। शायद मेरे प्रवेश की इजाजत मांगी गयी। मिल गयी; तो दरवाजा खुला। मैं अन्दर चला गया।

शराब की दुर्गन्ध से सारा ड्राइंग रूम भरा हुआ था। पुलिस में नौकरी करते हुए भी जोगलेकर साहब शराब पीते हैं ! सो भी मां-अन्नपूर्णा के घर में होते हुए भी ! ऐसी कल्पना नहीं थी। इसलिए विरक्ति से मन कड़ुआ हो आया।

कहने लगे:—‘हल्लो राम, कैसे हो ? बहुत दिनों से आये।’

मैं जवाब नहीं दे सका। मेरी दृष्टि शराब की बोतल पर जमी हुई थी। उन्होंने देख लिया। कहने लगे ‘यस, राम, सचमुच यह अच्छी चीज नहीं। आदत सुधर सकती है। पर लत नहीं। यह पुलिस-खाता कुछ ऐसा ही है ! इसके बिना काम नहीं चलता।’

उनकी सफाई के बावजूद भी मन की कुंठा गयी नहीं। इस सम्बन्ध में बोलने का अधिकारी नहीं हूँ, यह जानकर चुप ही रहा। इशारे से कुर्सी पर बैठने के लिए कहा गया। चुपचाप धीरे से जाकर बैठ गया।

उम अपरिचित आदमी ने सोढ़े की बोतलें निकालीं। शराब की भूरे रंग की बोतलें टेबल पर चमक रही थीं।

इससे पहले कि वे ग्लासों में शराब ढालें, किसी ने दरवाजे की घंटी बजायी। वह अपरिचित उठा। चिढ़ते हुए उसने दरवाजा खोल कर झांका। लेकिन पहले की तरह उसने किसी के आगमन की सूचना नहीं दी। इजाजत भी नहीं मांगी। वह पीछे हट गया। दरवाजा खुला ही रहा और पुलिस-विभाग के कोई बड़े पदाधिकारी अन्दर चले आये।

नवागन्तुक पुलिस अधिकारी कोई वृद्ध सज्जन थे। राँवीली मूँछों से उनके व्यक्तित्व की कठोरता और दृढ़ता चमक रही थी। उपस्थित वातावरण से उनका चेहरा विकृत हो गया। मजबूत आवाज में उन्होंने कहा, यह सब क्या है ? ऐसा आप कर सकते हैं, उम्मीद नहीं थी !

मैंने देखा, पलक झपकते ही जोगलेकर महोदय संभल गये। मेरी ओर क्रोधित नजरों से देख कर बोले, ‘ऐसे तू नहीं बतायगा। थाने जाने पर सब उगल देगा। देखिये तो इसकी जुर्रत ! जहाँ पर मैं रहता हूँ, उसी बिल्डिंग में यह धंधा करता है !’

नवागन्तुक अधिकारी का क्रोध ढीला हो गया। अपराधी बना मैं इस नवीन परिस्थिति को समझने की कोशिश करने लगा। ऐसी कृतघ्नता और नीचता की उम्मीद नहीं थी। डर और उत्तेजना से अवरुद्ध उस वातावरण में

एक क्षण के लिए भी बैठना असह्य हो गया। भर्राये हुए स्वर में मैंने बोलने की कोशिश की 'मैं.....।'

पर्दा हिला। अन्नपूर्णा-माँ अन्दर चली आयीं। लगा कि जो कुछ हो चुका है, वह उन्हें मालूम हो गया है। नवागन्तुक अधिकारी ने उन्हें नमस्कार किया। वे आते ही कहने लगीं, 'इस लड़के को और इन सारी गन्दी चीजों को यहां से हटाते क्यों नहीं?'

मैं निःस्तब्ध खड़ा रहा। मन ही मन कहा, 'हे भगवान्।'

-यहां खड़े रहना भी कितना मुश्किल है।'—अन्नपूर्णा बोलीं।

अधिकारी-महोदय के सामने बात स्पष्ट हो गयी। जोगलेकर साहब इस नाटक से निर्दोष घोषित हो गये। अपराधी मैं, ठगा-सा खड़ा रहा।

-आपके लिए चाय का इन्तजाम करो।

-अभी लायी। आप सब लोग स्टडी-रूम में बैठिये। आइये।

जोगलेकर साहब उन्हें अन्दर स्टडी-रूम में ले गये। जैसे कोई बहुत जरूरी बात कर रहे हों, दोनों एक दूसरे में व्यस्त हो गये।

ड्राईंग रूम से जाते हुए इन लोगों को मैं घृणा, जुगुप्सा और तिरस्कार की दृष्टि से देखता खड़ा रहा। उन सबके कमरे से निकलते ही अन्नपूर्णा ड्राईंग रूम में आयीं। उनकी आंखें छलछला आयीं थीं। बोलीं, 'राम, यह जाहिर मत होने देना कि वे शराब पी रहे थे। मेरी कसम, ऐसा मत कहना। मैं तुझे छुड़ा लूंगी। मेरे लिए इतना करना।'

मैं चुपचाप अपराधी की तरह खड़ा रहा। जिसे माँ कहता था, उसी ने अपराध स्वीकार करने के लिए कहा था।

सोचा, माँ-अन्नपूर्णा के किसी काम आ सकूँ, उनके एहसानों से उक्कण हो सकूँ, यह है सौभाग्य की बात। लेकिन, जो कानून की दृष्टि से गुनहगार हैं, उनके लिए झूठ बोलकर, अपना अहित करके, जोगलेकर के साथ क्या न्याय कर सकूंगा? अपने को शहीद करके भी, गौरव करने लायक मेरे पास क्या रह जायगा?

लेकिन माँ-अन्नपूर्णा की कसम? उनकी अधीर व्याकुलता? आह, उन्होंने इस गुनाह पर मुझे भी दांव पर लगा दिया।

चाय पीकर वे सब लौट आये। मेरी ओर देखकर वे उच्चाधिकारी महोदय कर्कश आवाज में बोले, 'सूरत से कितना भोला लगता है। क्यों वे, क्या नाम है तेरा?'

-राम ।

-कहाँ से लाता है यह ?

कोई जवाब नहीं दिया ।

-क्यों रे, तुझे भी यह लत है क्या ?

मैं चुप रहा ।

एक बार जी में आया कि सब कुछ सही-मही बताकर इस प्रपंचसे मुक्त हो जाऊँ । नीच आदमियों के लिए अपने माथे पर कलंक लेना कैसी लज्जाजनक बात है । लेकिन जवान जड़ बन गयी । एक शब्द भी नहीं कह सका । 'क्रौंचवध' चित्र वहीं पड़ा रहा । किसी ने मुझ पर दया नहीं की ।

मैंने तन कर, माथा ऊँचा करके, कानून के सामने अपने को अपराधी घोषित कर दिया ।

उन्होंने जाते-जाते एक बार फिर पूछा, किस अड्डे से लाता है ? किमके लिए लाता है ?

जानता नहीं था । कहा, मालूम नहीं ।

-अभी मालूम हो जायगा । हटाओ इसे ।

शायद अन्दर आकर जोगलेकर साहब ने थाने फोन कर दिया था । दौ कांस्टेबल आ गये । एक ने हाथ पकड़ा । दूसरे ने वह मादक-द्रव्य कब्जे में कर लिया । बाहर जीप खड़ी थी । उनके साथ जाकर बैठ गया ।

थानेदार ने आँखों देखी, रंगे हाथों गिरफ्तार होने की रिपोर्ट लिखी । फिर जीप में बिठा दिया गया । वहाँ से अनजानी जेल में गया । एक छोटे से तंग कमरे में बंद कर दिया गया । पास-पास और भी अनेक कमरे थे । मालूम हुआ, अपराधियों की कमी नहीं ।

-कौन जाने इनमें अपराधी कितने हैं, और मासूम, निर्दोष, निर्बोध कितने ?

-घर पर नीला मेरा इन्तजार कर रही होगी ।

-माँ किस मुंह से यह समाचार उस तक पहुँचा सकेगी ?

-मृणाल मुनेगी तो वह क्या सोचेगी ?

अकेला हुआ तो मृणाल की याद बार-बार आने लगी । सोचा, ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर किसी रूपसि के बारे में सोचना 'मनसा' का संस्कार नष्ट करना है ।

फिर भी मन में अनचाहे, अनजाने विचार दौड़ते रहे । किसी को बहुत कुछ कहने के लिए व्याकुल होने लगा । जोगलेकर के प्रति घुमड़ रही घृणा

अन्दर ही अन्दर फुसफुसा कर रह गयी। अन्नपूर्णा--मां को भूल जाना चाहा। वह असत है। असत चिन्तनीय नहीं। मृणाल भी विचारों का केन्द्र बनने की अधिकारिणी नहीं। वह वज्रिता है। रही एक नीला, वही.....! उसी के बारे में सोच-सोच कर दुखी हो जाता हूं। वह मेरी कष्ट-गाथा सुनेगी। पुलिस का हिरासत में हूं यह जान जायगी तो दुखी होगी। रोयेगी। उसका विवशता मुझ से कहीं अधिक गम्भीर और दयनीय होगी।

जेल में हूं। परवश हूं। दंड मिलेगा। जाने कितने असें तक यहां रहना पड़े। जाने क्या-क्या भोगना हो? बाहरी दुनिया के बारे में सोचना गुनाह है, उससे मन को अधिक क्लेश होगा। अधिक दुख होगा। इसलिए आंखें बंद करके सब कुछ भूल जाने की कोशिश करने लगा।

रात होने वाली है। शायद हो गया हो। कोठरी के अंधकार में समय का ठीक अन्दाज नहीं हो सकता।

जोगलेकर साहब के यहां ये निकला था, उस समय पांच बजे थे। इस समय शायद आठ बज रहे होंगे। बाहर के नीले आसमान में तारे निकल आये होंगे। सड़क पर वक्तियां जल उठी होंगी। नीला भोजन बनाकर, मेरा इन्तजार करनी हुई मन ही मन गुस्से हो रही होगी कि अभी तक राम आया नहीं।

मृणाल कोई चित्र बना रही होगी। उसकी बिखरी हुई लटें माथे पर उड़ आयीं होंगी। वह अपनी आदत के अनुसार कोहिनी में उन्हें हटा कर, दन्तचित्त होकर अपने काम में लग गयी होगी। कितनी स्पष्टवादी है! ऐसे लोगों में स्पोर्ट्समेनशिप प्रायः नहीं होती। लेकिन उसमें है। मैंने उस दिन नहीं कह दिया तो वह खामोश हो गयी। पर परिचय इति नहीं हुआ। वह मुझसे अपने चित्रों की प्रशंसा की उम्मीद करेगी। उसके एक-एक चित्र में है आशा का अजस्र प्रवाह। लेकिन वास्तविक जीवन की इस भयानकता में आशा के ये केन्द्रबिन्दु कितने क्षीण और दरिद्र हैं?

नीला भूखी बैठी होगी। अब चिन्ता करने लगी होगी। शायद उसे मालूम हो गया होगा कि मैं हवालात में बंद हूं। सम्भवतः उसे कल मालूम हो, और वह सारी रात दुश्चिन्ता के मारे जागती हुई ही बिता दे। जब उसे सब कुछ मालूम हो जायगा, तो कारण भी छिपा नहीं रहेगा। उस दिन नीला

के सामने ही 'अन्नपूर्णा' नाम मैंने अपनी ओर से रखा था । यह इतना गलत तो नहीं होगा कि वे नीला को सारी बात न बता दें ।

भगवान् करे, उसे सही बात मालूम न हो । अन्यथा सब कुछ सही-सही घटाने के सिवाय मेरे पाम कोई उपाय नहीं रह जायगा ।

खाना आया । रुचि नहीं थी । दो-एक कौर लेकर तसला हटा दिया । सोचते ही सोचते सो गया । वार्डर आया । उसने बातचीत करने की कोशिश की । मैं चुप ही रहा । टाट का टुकड़ा बिछा कर लेट गया । नींद आ गयी ।
सुबह पेशी हुई ।

चौक में खड़ा कर दिया गया । दोनों हाथ बांध दिये । पूछा, बताओ, अड्डा कहाँ है ?

नहीं बता सका । बता सकता, तो भी बताता—सन्देह है ।

चुप रहने के अपराध में मार पड़ी । एक आदमी दूसरे आदमी को जितना पीट सकता है, पीटा । शरीर का कष्ट दुख तो देता ही । बारम्बार मन को धीरज देने की कोशिश करता; 'इतना करके माँ-अन्नपूर्णा के ऋण से मुक्त हो जाऊँ, यह सौभाग्य है।' अपने को निर्विकार रखने का प्रयत्न करना चाहता था, पल भर के लिए भी अन्नपूर्णा के प्रति विरक्त न होऊँ । जो कुछ भी हो रहा है, वह उनके प्रेम और अधिकार के बल पर ही तो !

ओह, उस पीड़ा को याद कर, आज भी सिहर उठता हूँ ।

शरीर क्षत-विक्षत हो गया । रक्त तो देख ही सकता हूँ । और अपना गाढ़ा रक्त । चिल्ला-चिल्ला कर अपराधी से गत अपराध की सूची जानने की पुलिसवालों की कोशिश अविराम गति से चालू है ।

कितनी निष्पुरुता !

आंखें मूँदे मार खाता रहा ।

तभी किसी की चीख से आंखें खुल गयीं ।

नजर उठाकर देखा, सामने जाली के पास नीला खड़ी थी । विवश-क्रोध और आकंठ कष्ट से उसका चेहरा तमतमा रहा था । आंखों में आँसू थे । भर्राये स्वर में बोली 'राम,.....!'

आवाज सुनी । उत्तर नहीं दे सका ।

लगा कि उसकी उपस्थिति नहीं होती, तो दूसरी सांस लेने के लिये जिन्दा नहीं रहता ।

वह यहां कैसे आयी, यह नहीं जान सका। लगा कि उसका उपस्थित होना अनिवार्य था। इसलिए वह मौजूद थी। बस, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

जैसे किसी अवांछनीय निर्बल पशु को धक्का देकर फेंका जा सकता है, ठीक उसी तरह धक्का देकर, अपमानित करके किसी ने उसे वहां से जबरदस्ती हटा दिया।

वह चीखती रही, 'राम निर्दोष है! अरे हल्यारों, उसे छोड़ दो। मैं सब सही-सही बताती हूं।' तड़प कर, हाथ छुड़ाकर वह जाली के पास आकर खड़ी हो गयी। उसकी अंगुलियां जाली के छेदों से मुझे दिखायी दे रहीं थीं। उसकी बंद होती मुठ्ठियों को लोहे की जालियां काट रहीं थीं। खून गिर रहा था।

मेरे चैतन्य नहीं था। खो गया था। ऐसा याद आता है कि एक बार मुंह से निकल गया, 'नीला, तुम जाओ। कष्ट होता है।'

नहीं जानता, उसने सुना या नहीं।

दर्द अधिक होने लगा था, शरीर का भी, मन का भी। बेहोशी में झुक-सा गया।

ग्यारह :

एक ही दिन मार खानी पड़ी। प्राथमिक डाक्टरी उपचार के बाद छोड़ दिया गया। जो कुछ हो चुका था, उसके अतिरिक्त यह मालूम हुआ कि जोगलेकर महोदय की कृपा के कारण मुक्त हो सका। यह भी छिपा नहीं रहा कि नीला रिश्वत देकर, रुपये देकर, मुझे देखने के लिए आयी थी। शायद उसे सब कुछ मालूम हो गया था। हो सकता है, छुड़ाने के लिए भी उसने रिश्वत दी हो।

मार खाने से जितनी चोट नहीं लगी, उतनी यह जान कर, कि नीला ने मुझे देख लिया था; और वह बहुत दुखी हुई थी।

सारे शरीर में दर्द हो रहा था। रास्ते चलते व्यक्तियों की सहानुभूति से भरी नजरें बंधी हुई पट्टियों की ओर उठ जाती। मैं गर्दन नीची करके मानों सारे रहस्य को छिपा लेता।

एक मौका मिला था कि कुछ भले व्यक्तियों के सामने सिर उठाकर चल सकूँ। वह भी अब नहीं रहा। कुछ नहीं, सब कुछ क्षण-भंगुर। मिथ्या—एक दिन नष्ट हो जाने के लिए। जो व्यक्ति जन्म से ही अभाग्य लिये आया हो उसकी मुक्ति कहां? कैसे चैन पाये वह? उसके क्षुद्र मुख के प्रति सबकी ईर्ष्या भरी नजरें अभिषाप बरसाने लगती हैं।

घर गया। नीला नहीं थी। दरवाजा बंद था। खड़े होने का सामर्थ्य नहीं थी। भूख लगी थी। नीचे उतर आया।

चौपाटी पर अपार जन-समुदाय आमोद-प्रमोद मना रहा था। शायद रविवार था।

सोचता रहा, नीला कहां गयी होगी? कहां मिलेगी?

एक परोपकारी सज्जन कबूतरों के लिए दाने छिटका रहे थे। नजदीक से देखा। चने थे।

—जी किया कि कुछ अपने लिए भी मांग लूं।

—लेकिन इतनी क्षुद्र दया की भीख?

नहीं मांग सका।

पास में एक भी पैसा नहीं था। भूख बढ़ती दोपहर का तरह तप रही थी। अपने को देखा, कौनसी ऐसी चीज है, जिसके विनिमय में एक वख्त का खाना मिल सके? कहां जाऊँ, कि बिना किसी स्पष्टीकरण, खाने के लिए हाथ पसार सकूँ?

कुर्ता नया था। खोला। वर्ष-गांठ वाले दिन नीला ने इसे बड़े जतन से बनवाया था। भूख से पागल सोचने लगा, यदि यह बिक जाय, तो खाना खा लूं!

कबूतरों के लिए जो सज्जन दाना बिखेर रहे थे, उनके पास गया। कहा, यह कुर्ता नया है, भूख लगी है, इसे खरीद लीजिये।

तन्मयता में बाधा पड़ी, इसीलिए चिड़चिड़ाहट के स्वर में उन्होंने इतना ही कहा, जाओ, जाओ। हटो।

मैं हट गया।

दो कदमों के फासले पर सभ्रान्त युगल बैठे हुए थे। उनसे पूछा, 'यह कुर्ता खरीद लेंगे? आपके काम शायद न आये। लेकिन मैं भूखा हूँ, और भीख नहीं मांग सकता। इसलिए इसे बेच रहा हूँ।'

उत्तर मिला, आगे जाओ भाई।

आगे बढ़ गया।

भूख के मारे माथे में बगूले-मे उठने लगे। चक्कर आने लगे। भूखे रहना नयी बात नहीं। पर किलबिलते घावों में यह पीड़ा अप्रत्या थी।

धीरे-धीरे महात्मा तिलक की मूर्ति के पास जाकर बैठ गया।

तभी कोई पारसी सज्जन दूरबीन लगाकर मूर्ति-दर्शन करने आये। मुझे देखकर कहने लगे, 'ऐसी पवित्र जगह में भी ये गंदे आदमी आकर बैठ जाते हैं। पुलिम ध्यान ही नहीं देती।'

उठा; आगे बढ़ गया। पैर भारी हो गये, पर उस पवित्र मन्त की मूर्ति पर लांछन लगाना नहीं चाहता था। न ही पारसी सज्जन द्वारा प्रशस्त अव्यवस्था की समालोचना में ही मेरी रूचि थी।

चौपाटी के पास ही एक बड़ा-सा केबिन है। खड़ा नहीं रहा गया। कुर्ता बेच कर कमाने का उत्साह भी नहीं रहा। इसलिए वहीं बैठ गया। बैठे-बैठे कमर दर्द करने लगी। लेट गया। लगा कि माथे का दर्द भारी होकर सारे शरीर में व्याप्त हो गया है। अपने ही हाथ से दूसरा हाथ देखा। लगा कि तप रहा हूँ। मुलगते हुए सोचने लगा अच्छा होता, नीला के दरवाजे पर ही लेट जाता। आती, तो अपने आप चिन्ता करती।

अब वहां तक पहुंचना सम्भव नहीं। बहुत दूर है!

सामने उच्चाल तरंगों के सम्भ्राट समुद्र को देखा। वह अपनी स्थिर मर्यादा और अविचलित धीरज के साथ लहरा रहा था।

शीतल हवा से कंपकपी-सी लगने लगी। पैर सिकोड़ने का प्रयत्न करने पर, घावों का दर्द असह्य हो गया।

सोचा, अभी तक इस संसार से कुछ भी नहीं पाया। बहुत कुछ पाने का विश्वास भी टूटा नहीं। एक दिन ऐसा ही हुआ था, कि अन्त काल में, जब वह वासनाओं से मुक्त होकर लाचार पड़ी थी, तो एक बौद्ध-भिक्षु ने आकर उसे सम्पूर्ण प्रेम प्रदान किया था। वासवदत्ता की सारी वेदना उस दिन शान्त हो

गयी थी। तमाम व्यतीत को भूल कर, वर्तमान के उस सुनहले स्वरूप को देखकर, जो नहीं पा सकी, उसके प्रति सारी शिकायतें उस दिन शेष हो गयीं।

है कोई इस समय, मुझे भी ढूंढ कर उस बौद्ध-भिक्षु की तरह अविभाज्य स्वार्थ-विहीन प्रेम देने वाला ?

-नहीं। नहीं, कोई नहीं।

-एक नीला ?

नहीं, वह भी नहीं। उसके प्रेम में डरता हूँ। उसकी करुणा को सह नहीं पाता। इतने उज्ज्वल प्रेम का अधिकारी मैं नहीं। मेरे पृथ्वी का तेज इतना प्रखर नहीं।

आंखें मूंद लीं। समुद्र अदृश्य हो गया। ऊपर खिला हुआ अनन्त आकाश ओझल हो गया। अन्धकार, चारों ओर घोर अन्धकार; जिसमें मेरे अस्तित्व का पता नहीं। जैसे खोजने की इच्छा ही मर गयी हो।

कुछ होश आया, तो बहुत कमजोरी महसूस होने लगी। अर्द्ध-निद्रावस्था में अनेक विचित्र सपनों के बीच भटकते-भटकते मैंने पूरा दिन बिता दिया। रात होने आयी। पास ही आकर कोई बैठ गया था।

आंखें खोलकर देखना चाहा, कौन है ? लेकिन धुंध में साफ दिखार्यो नहीं दिया।

मुझे जागते देख वह फुसफुसाया। फटे और गंदे टाट से ढँका हुआ हूँ, यह जाना। इस कृपा के लिए धन्यवाद दूँ, इसलिए उठ बैठा।

-यह नीला नहीं। मृणाल भी नहीं। माँ अन्नपूर्णा ? नहीं, वह भी नहीं। अन्तकाल में उनकी कृपा को अपने साथ नहीं ले जा सकूंगा। श्रृणु-परिशोध की शक्ति अब शेष नहीं रही।

-लगा कि जैसे मौत बहुत करीब आ गयी है।

-जैसे निर्विकार हूँ। शांत।

-इस विशाल संसार से किसी एक व्यक्ति का चले जाना कोई अहमियत नहीं रखता। बल्कि एक व्यक्ति का जिन्दा रहना, मौजूद रहना समस्या है !

विचारों का ताँता टूट-सा गया। मुड़ कर प्रस्तुत शरणागत की ओर देखा। मुझे होश में आया जान, उसने पूछा, तबियत कुछ ठीक हुई रे ?

-अब ठीक हूँ, बाबा। मैंने कहा।

उठ कर बैठते ही सारे घाव हिल गये। प्रार्थना की, 'सहारा दो बाबा। कुछ दूर तक पहुँचा दो।'।

-पहुँचा दूँगा। तेरा घर कहाँ है ?

-यहीं, पास ही है।

-तो यहाँ क्यों पड़ा है ?

-भाग्य की बात है। होनी यही थी।

-घर से लड़-झगड़ कर आया है क्या ? और यह लगी काहे की ?

-पुलिसवालों ने मारा।

कहते हुए आँसू आ गये। लगा कि इसके अतिरिक्त कुछ नहीं हूँ कि एक निर्दोष ने मार खाई है। कहा, मेरा कोई अपराध नहीं था बाबा !

उसने तर्क नहीं किया। यही कहा, ये पुलिस वाले ऐसे ही होते हैं भाई, और तो कुछ कर नहीं सकते, मगर जब जी चाहता है, गरीबों को उठाकर लारी में डाल कर ले जाते हैं। मारमूर कर-उधर भगा देते हैं। भाग्य की ही तो बात है भइया। नहीं तो, दो हाथ पैर वाले, दो कान आँख वाले इसी दुनियाँ में सुख भोगते हैं। वैसे ही हम भी हैं, लेकिन दुख लिखा कर लाये हैं, भइया, तो सुख मिले कैसे ?

मुझे सहारा देते हुए कहने लगा, यहाँ पड़ा रहेगा तो और बीमार हो जायगा। चल, किसी मकान की छांह में चलें। आज कितनी ठंड है। मैं तेरे पास बैठा रहूँगा।

सहारा पाकर उठ खड़ा हुआ। बूढ़ा खुद कमजोर था। लाठी संभाले और मेरा बोझ लिये चल रहा था। कपड़ों से बदबू आ रही थी। लेकिन उस समय मुझे वह स्वर्गीय दूत से कम नहीं लग रहा था। आदमी भी कितना स्वार्थी है !

चलते-चलते अपनी धुन में ही वह कहता गया, 'भाई अपने पास धन दौलत तो है नहीं। दया-माया भी नहीं होगी, तो इस जिन्दगी में तो दुख पाया; अगला जमारा भी क्यों खराब करें ?'

मैंने उस वृद्ध की ओर देखा। जन्म-जन्मान्तरों से सुख की लालसा लिये ये जीते हैं और मर जाते हैं। फिर भी अखण्ड आशावाद इन्हें जन्म के साथ ही मिल जाता है, 'आज नहीं तो कल, सुख प्राप्त होगा।' कौन जाने,

बोते हुए कल में उन्होंने कुछ पाया या नहीं। लेकिन भविष्य के प्रति इनकी निष्ठा, सारी तिक्तता के बावजूद भी धुंधली नहीं हुई है।

कुछ ही दूर चलने पर हाँफ गया। कहा, बाबा कुछ देर ठहर जाओ। चलने में तकलीफ होती है।

रात हो आयी थी। मोटरों की हेडलाइट्स की चमक ही याद दिला पाती थी कि यह बम्बई है। अथवा इमशान ऐसा ही मूर्तिमान होता है, यह कल्पना होने लगती।

वहीं फुटपाथ पर भूत की तरह हम दोनों बैठ गये।

कुछ दम लेकर धीरे-धीरे हमने सड़क पार की। नीला का घर आ गया। बूढ़े को मन ही मन कोटिशः धन्यवाद देकर मैंने विदा ली। धीरे-धीरे ऊपर चढ़ गया। नीला को सामने पाने की कल्पना में, उस शरणागत का कुछ स्वागत करना चाहिए, यह याद ही नहीं आया। बिना कुछ कहे वह चला गया।

नीला के कमरे में रोशनी जल रही थी। लगा कि जैसे कोई पुरुष अट्टहास कर रहा हो। नीला के कमरे की यह अनजानी आवाज रात्रि के इस गहरे वातावरण को भेद कर मेरे चारों ओर लिपट गयी।

लज्जा की एक ही बात माथे में भिन्नान लगी। ओह, नीला! किसी के साथ रंगरेलियाँ मनाती हुई घूर्णित, कुत्सित-कर्म में लिप्त!

शत-शत अभिषाप बरसाता हुआ नीचे उतर आया, 'नीच, कृतघ्न, पापी!'

सीढ़ियों की रेलिंग मजबूती से पकड़े हुए था। फिर भी उन्नेजितावस्था में संतुलन नहीं रख सका, और फिसलते कदमों के साथ लुढ़कता हुआ नीचे गिर पड़ा। भूख, बुखार और कमजोरी पर यह मानसिक आघात सहा नहीं गया। नहीं संभाल सका।

मिर में लगी चोट से खून निकल आया। यह खून इसी तरह व्यर्थ ही बह जाने के लिए है? सोचकर करुण हो आया। पर अब नीला कृपा करके उठा ले जाय, ऐसी दया वर्दाश्त करने में असमर्थ था। एक ओर हो गया।

किसी के आनेकी आवाज आयी, पूछा, कौन है?

कोई उत्तर नहीं दिया। जब्त किये रहा।

भोर होने पर सड़क पार कर, समुद्र के किनारे की फुटपाथ पर आकर बैठ गया। स्वास्थ्य के प्रति अत्यधिक जागरूक बहुत सुबह घूमने आने वाले,

लोग नगण्य मात्रा में टहलने लगे थे। बुखार के मारे सुलग रहा था। सिर दर्द के मारे फटा जा रहा था।

वर्षगांठ के उपलक्ष में प्राप्त कुर्ता अभी तक हाथ में थामे हुए था। उसे ओढ़ लिया, कि यही अंतिम कफन हो जाय। जीवन इसी सीमा पर समाप्त हो जाय। अब पाने लायक कहीं कुछ भी नहीं रहा।

लेकिन उस दिन भी मर नहीं सका।

जाने की तमन्ना जाने कैसे फिर भिर उठाकर खड़ी हो गयी। बारम्बार नीला की बात याद आती, कि जीना तो होगा ही। यही ईमानदारी है। यही सच्चाई है। जिसने यह दृष्टिदान दिया, उसके प्रांत गहारी करूं, ऐसी लज्जाजनक बात कैसे मोचूं?

दो-एक पुरुष और तीन-चार महिलाएं पास से गुजरीं। मैंने भर्राये हुए कंठ से पूछा, 'आप धनवान हैं?'

उन्हें प्रश्न शायद कुछ अजीब-सा लगा। रुक कर, ठिठक कर, कुछ आश्चर्य के साथ उन्होंने पूछा, क्यों?

-यह कुर्ता खरीद लो, भाई।

एक लम्बे मगर दुबले-ये आदमी ने टार्च जला कर गौर में मेरी ओर देखा। जाने क्यों उसने मुझे भिखमंगा नहीं समझा। बल्कि कुर्ता हाथ में लेकर पूछा, कितने पैसे लोगे?

भाव मालूम नहीं थे। एक रूय्या मांगा।

-बहुत ज्यादा है।

-तो कुछ भी दे दीजिये।

उसके साथी पास आ गये। वह उनसे कहने लगा, एक क्लामिक कहानी का प्लॉट है। जीता जागता मोडेल! यह है आपका गणतंत्रात्मक हिन्दुस्तान!

मोडेल शब्द को सुनकर चमत्कृत-सा हुआ। जानता हूं, जो इसका अर्थ समझते हैं उनके लिए मैं इतना सस्ता नहीं हूं। चिल्ला कर बोला, मैं मोडेल नहीं हूं। यदि हूं भी तो बहुत महंगा!

शायद वह कोई लेखक होगा। मेरी बात सुनकर कुछ अप्रतिभ-सा हुआ। कुछ दिलचस्पी हुई। पूछा, 'यह चोरी की तो नहीं?'

नसों में तनाव आ गया। घावों की पीड़ा भूलकर उत्तेजित होकर बैठ गया। कहा, 'चोरी की नहीं, ईमानदारी की है। चोरी कर सकता, तो यहां, इस तरह से नहीं पड़ा होता ! चोरी कर सकता तो.....!'

विश्वास उखड़ गया। अधिक बोल नहीं सका। मुझे ठंडा होते देख कर वह हंसा। एक रुपये का नोट उसने मेरी ओर फैंक दिया।

हवा के झोंके के साथ नोट उड़ने लगा।

वे उसके पीछे भागे। उनके साथी मेरे पास ही दयाद आंखों से देखते खड़े रहे। दूसरे ने पूछा, 'भले घर के आदमी लगते हो। कहां रहते हो ? कुछ पढ़े-लिखे भी तो मालूम देते हो। कोई काम-धाम क्यों नहीं करते ?'

-काम तो करता ही हूं। बीमार हूं। होता नहीं।

-इलाज करवा लो।

-करवाऊंगा।

तभी एक महिला ने कहा, इसे किसी अस्पताल में क्यों नहीं पहुंचा देते ?

'नहीं जी', पुरुष ने उत्तर दिया 'ख्वामस्खाह दिक्कत होगी। कोई ऐसा-वैसा आदमी हुआ, तो पुलिस से माथा-पच्ची और करनी पड़ेगी। तुम्हारी तो आदत ही ऐसी है, गो कि मालूम है कि दबन करते हाथ जल जाया करते हैं।

जो जीना चाहते हैं, उन्हें दूसरों के सशक्त हाथों के सहारे को स्वीकार करना ही होता है। कष्टन स्वर में निवेदन किया, 'मुझे हास्पिटल पहुंचा दीजिये। मैं जीना चाहता हूं। इस तरह व्यर्थ ही मरना नहीं चाहता।'

जो हो। उस भद्र महिला के आग्रह का फिर किसी ने अधिक प्रतिवाद नहीं किया। एक ने पास से जाती हुई टैक्सी रोकी। मुझे सहारा देकर उसमें बिठा दिया। टैक्सीवाले ने इतने सारे आदमियों को बैठाने में एतराज तो किया, लेकिन मरीज को देखकर शायद उसे भी दया आ गयी।

टैक्सी में बैठा, तो सबकी जिज्ञासा का जवाब देना पड़ा। बताया, आर्टिस्ट हूं। घर जा रहा था, मगर बुखार के कारण चल नहीं सकता। घर में कोई नहीं है, किसी के यहां पेइंग-गेस्ट हूं। आप अस्पताल पहुंचा देंगे, इस कृपा के लिए कृतज्ञ हूं। स्वस्थ हो गया, और जिन्दा रहा तो आपके एहसान को भूलूंगा नहीं।

अस्पताल के दरवाजे पर जाकर टैक्सी रुकी। एडमिशन हो गया।

अस्पताल की कोई बात इससे अधिक उल्लेखनीय नहीं कि -वहां कुछ ही दिनों में ठीक हो गया। एक कम्पाउण्डर से जान-पहचान हुई। उसे परिचय के सिलसिले में जोगलेकर का नाम बता चुका था। फोन करके उसने तस्दीक कर ली। मेरा नाम बताने पर आश्वासन भी मिल गया कि जो खर्च होगा, वे चुका देंगे। अन्नपूर्णा के हाल पूछने पर मालूम हुआ कि वे यहाँ नहीं हैं। पूना चली गयी हैं।

घाव ठीक हो गये; लेकिन बुखार ने पिंड नहीं छोड़ा।

एक दिन देखा, नीला किसी मरीज के लिए खाना लायी थी। खुद को उसकी नजरों से छिपाना चाहता था, सो कम्बल ओढ़कर लेट गया। उसने देखा नहीं। अच्छा ही हुआ। दो दिनों बाद वह फिर आयी। इस तरह कब तक बच सकूंगा, इस चिन्ता के मारे एक दिन बिना किसी से कुछ कहे, अस्पताल से निकल कर बाहर चला आया।

जैसे मुक्ति मिली।

दुनिया बहुत बड़ी है, लेकिन मैं कहाँ जाऊँ? कौन है मेरा, कि जिसके प्रति, पल-भर के लिए भी विरक्त न हो सकूँ?

अनजाने में ही धीरे-धीरे मृणाल के यहाँ पहुँच गया। वह घर में नहीं थी। स्कूल गयी थी। सोना ने बड़े प्यार और उलाहने के साथ स्वागत किया। मेरे स्वास्थ्य को देखकर आश्चर्य और दुख प्रकट किया। पूछा 'जीजी को फोन करके बुला लूँ?'

-बड़ी कृपा होगी। खड़ा नहीं रह सकता। बैठना चाहता हूँ।

मेरा हाथ पकड़कर, सहारा देकर अपने कमरे में ले गयी; एक आरामकुर्सी पर मुझे बिठा दिया।

सोना ने मृणाल को फोन किया। लेने के लिए कार भेज दी। माँ को सूचित किया, वे भी आयीं। उन्हें इतना ही बताया, कि बहुत दिनों से बुखार है, कमजोरी आ गयी है।

आयुर्वेद की प्रशंसा में एलोपैथी की निन्दा करती हुई, उन्होंने कई अनुभूत औषधियाँ बता दीं। कहा, उनका ही सेवन करें। कुछ दवाइयाँ भिजवा भी दीं।

थोड़ी देर में मृणाल आ गयी। चेहरे पर चिन्ता थी। पिछले दिनों में जैसे सूख गयी हो। व्यग्रता से पूछा, 'इतने दिन कहाँ थे राम ?'

-बीमार था ?

-कब मे ? क्या हुआ ?

-बुखार था। ठंड लग गयी, इसलिए शायद टायफाइड हो गया। अब ठीक हूँ।

-आओ।

उठकर उसके साथ कंधे का सहारा लेकर, उसके कमरे में चला गया।

पूछा, मुझे खबर दे देते, तो पाप हो जाता ?

दे नहीं सका। मजबूर था। पुलिस की हिरासत में अन्य चाहें जितनी सुविधाएं हों, टेलीफोन करने की सुविधा नहीं।

-वह चौकी, सावधान हुई, बात काट कर पूछा, पुलिस ?

-हां मृणाल ! इतनी मार पड़ी कि घाव हो गये। वहां से लॉटने पर चौपाटी की गर्द हवा में बैठा रहा, इसलिए बुखार हो आया। किन्हीं देवदूतों की कृपा से अस्पताल पहुंचा दिया गया। वहां जी नहीं लगा, तो 'कहां जाऊं', यह सोचकर तुम्हारे पास चले आने के सिवाय कोई मार्ग नहीं दिखाया दिया। सो यहीं चला आया।

-पुलिस ने क्यों पकड़ा ? नीला के यहां नहीं गये थे ?

-नहीं मृणाल, वहां नहीं जा सका। अब कभी जा सकूंगा, यह भी नहीं जानता।

मेरे सामने कुर्सी खींचकर बैठती हुई बोली, साफ-साफ कहो न, क्या हुआ था ?

-कुछ नहीं। शराब से सम्बन्धित एक अपराध के सिलसिले में पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था। मां-अन्नपूर्णा को तुम जानती हो ? शायद नहीं जानती ? उनके प्रति की कृपा से छूट आया। लेकिन.....! जो हो, मृणाल ! इस समय दूसरों की दया और कृपा पाने के बजाय तुम्हारी सहायता मेरे लिए अधिक उपयोगी हो सकेगी। मैं जीना चाहता हूँ। पर नीला और दुनिया के तमाम लोग मेरे विरुद्ध षडयंत्र रच कर चाहते हैं कि मैं मर जाऊं। पर मैं मरना नहीं

चाहता, जीना चाहता हूं। इसलिए, यह सोच कर, कि तुम्हारे मामने मुझे लज्जित नहीं होना होगा, यहाँ चला आया।

सोना चली आयी। पलंग पर बैठी वह मेरी बात सुन रही थी। मृणाल मेरी बात से अप्रतिभन्गी व्यस्त बैठी रही।

सोना ने कहा, आपकी तबीयत अभी तक ठीक नहीं है। बात अधिक मत कीजिये, थोड़ा आराम कर लें। जीजी कहो तो, इनके लिए ऊपर का गेस्ट-रूम खाली करवा दें ?

सोना ने गंभीरता से पूछा, तुम शराब पीते हो ?

अभियोग अस्पष्ट नहीं था। शिकायत अचंचल थी। आगेप गंभीर। चोट-सी लगी। चौंका। अस्थिर, कातर-दृष्टि से मृणाल की ओर देखकर बोला, 'यदि 'हां' कहूं, तो घृणा करने लगोगी तुम मुझसे! मृणाल, तुम सबके ममतामय ऐश्वर्य की अभी तक भूला नहीं हूं। यह जो आज तक सब कुछ मुन्दर दिखायी दे रहा था, सिर्फ नाटक ही था, मिथ्या ! भ्रम मात्र ?'

-घृणा तो नहीं कहूंगी। लेकिन आश्रय यहाँ है, यह भी नहीं कह सकूंगी।

-‘जीजी’, सोना धीरे से बीच में बोली।

-गरीब और अनाथ होकर भी जो नशे की मौज उड़ाते हैं—मृणाल ने कहा, 'वे दया के पात्र नहीं हो सकते। हो सकते हैं, तो इतने ही, कि उनका अनावश्यक अपमान नहीं किया जाय।'

विरक्त-सी मृणाल उठ कर बाहर चली गयी।

मैं स्तब्ध-सा सोना की ओर देखता रहा। कहा, सोना, इन कुछ ही दिनों में सब कुछ इतना बदल जायगा, ऐसा नहीं सोचा था। मृणाल को दुख देकर, उसकी इच्छा के विरुद्ध अब यहाँ नहीं ठहरूंगा। चलता हूं।

वह चुप रही। सोच कर पूछा, कहाँ जाओगे ?

-यह तो नहीं जानता। पर कोई तो जगह होगी, मेरे लिए भी ! कहीं न कहीं, कोई न कोई आश्रय निश्चित रूप से होगा, सोना। अभी तक इतना अधिक निराशवादी नहीं हुआ हूं। जो मंजूर नहीं, उसे इमीलिए तो छोड़ता चला जा रहा हूँ।

-नहीं, नहीं। मुनो राम। जीजी कोई सच कह रही है ! तुम नहीं जान सकोगे, जीजी ने ऐसा कह कर अपने साथ कितना छल किया है ! तुम्हारे प्रति इतना लगाव न होता, तो फोन करते ही भागी-भागी आती ?

-इतना ही बहुत है सोना। इससे अधिक के लिए स्थान नहीं रह गया है।

-तुम तो राम, बिलकुल शिशु हो। समझते क्यों नहीं? सुनो, उस दिन जीजी ने जो कुछ कहा था, तुमने 'ना' कह कर प्रत्युत्तर में सिर हिला दिया। तब क्यों नही मान लेते, कि यह भी उतना ही व्यावहारिक-सा है कि एक क्वोरी लड़की किसी से अधिक हेल-मेल न रखे। जिससे कि.....। आखिर दुनिया है, समाज है, मां है, भैया है। सबके प्रति उसै तो सफाई देनी है न? समझ रहे हो?

-समझ रहा हूं, सोना। खूब समझ रहा हूं। अभी तक हौश में हूं। यह सारा प्रेम इस परिणाम के इर्द-गिर्द ही था, तो यह कितना अस्थायी है? समझ सकता हूं। अच्छा हुआ, यह नाटक आज ही समाप्त हो गया। अन्यथा बाद में जीना दूभर हो जाता।

मैं उठ खड़ा हुआ। जाते-जाते कह गया, 'यदि ऐसा ही है सोना, तो मां-अन्नपूर्णा और मृणाल में क्या अन्तर रहा, बताओ तो? उन्होंने अपने बचाव के लिए, अपने पति के बचाव के लिए, जिसे पुत्र कह कर छाती से लगाया था, उसी निर्दोष को अपराधी साबित करवा दिया। मार खिलायी। बेगुनाह को मार! महात्मा ईसा ने भी तब श्राप के कहर गिराये थे। मैं उतना बड़ा नहीं। लेकिन यह मान कर सह गया कि प्रेम को सारे अधिकार हैं। प्रेम की सतह चाहे जो हो, मेरा पार्ट इतना ही था। इसे स्वीकार कर लेना अधिक ईमानदारी है सोना, कि अधिक ऋण-परिशोध की सामर्थ्य अब मेरी नहीं है। मृणाल के स्वार्थ को पूरा कर, दंड भोगने की शक्ति अब नहीं रही।'।

-मेरी मानो राम। कुछ देर आराम करके, चित्त शांत हो जाय, तो चले जाना। मैं पहुंचा दूंगी। जो इन्तजाम कर सकी, कहूंगी। दो कदम रख कर तुम खड़े हो सको, इतना कर दूंगी।

खड़ा अधिक नहीं रहा गया। सोना की बात सुनने के लिए ठहरा था, बैठ गया।

-पूछू तो बताओगे? दंड और अपराध की तुम्हारी सारी बात। अन्नपूर्णा-मां और वहां की घटना की बात? क्या हुआ था?

-किसी से बताने की जरूरत नहीं रही सोना। लेकिन तुम्हें इसलिए कहना चाहता हूं, कि इस सफाई से तुम्हारी दिलगोई का कोई सम्बन्ध नहीं; और मुझे तसल्ली हो जायगी, कि अपने सामने अस्पष्ट रहने का अपराध मैंने नहीं किया। मगर किसी के पास मेरी बात सुनने के लिए अवकाश न हो तो मैं कैसे

प्रायश्चित्त कहें ? तुम अपराध और अपराधी दोनों को देख सकोगी । अपराधी नहीं हूँ, यह तो ठीक से नहीं जानता । लेकिन जो हो चुका है, उस अपराध ने सारे भविष्य पर जो कौहरा डाल दिया है, उस दंड से जरूर डर गया हूँ । अन्नपूर्णा—मां कहती थीं, कि उनके मृत-पुत्र से मेरा चेहरा हू-ब-हू मिलता है । उनका असीम प्यार था, मेरे लिए । मेरी सहायता उन्होंने की । प्रदर्शनी का इन्तजाम किया । उनके प्रताप और आशीर्वाद को किसी भी घटना के कारण गौण नहीं कहता । लेकिन हुआ यह, कि उनके पति महोदय घर में शराब पी रहे थे । वे पुलिस अधिकारी हैं । इसलिए अपराध बढ़ा था । खास कर इसलिए कि उनसे भी बड़े कोई अधिकारी वहां पहुंच गये और उन्होंने भरी बोटलों को देख लिया । जोगलेकर ने बताया कि यह सब मैं यहां लाया हूँ । यह सब मेरा काम है । अपने आफिसर के सामने इस तरह से वे कर्तव्य परायण प्रमाणित हो गये । मां-अन्नपूर्णा ने कसम दिला कर मुझसे कहा, इसे मंजूर कर लेना । मैंने आदेश का पालन किया । परिणाम यह हुआ ।

बांह खोल कर बेतों के कच्चे घाव बता कर कहा, 'अभी तक ताजे हैं ।'

कहता ही चला गया, 'पिछले दिनों से सोचने लगा था, दुनिया बहुत खूबसूरत है । बहुत सुन्दर । जिस ओर नजर डालता हूँ, प्यार बरसता चला आ रहा है ! लेकिन देखता हूँ, इस प्यार में सर्वत्र दुर्गन्ध है । आडम्बर है । तुच्छ स्वार्थ है ! इसीलिए तो अब वितृष्णा हो गयी है । विरक्ति हो गयी है ।

—ऐसी थीं तुम्हारी मां-अन्नपूर्णा ?

—उनके बारे में निन्दा की बात मत करना सोना । उन्हीं की कृपा से तो जेल से छूटा । उन्होंने जो कुछ किया, अपने अधिकार के बल पर ही किया । मुझे योग्य पात्र समझ कर बलिदान कर दिया । लेकिन नीला ने.....ओह !

—नीला ने ? उसने क्या किया ? वहां क्यों नहीं गये ?

—बस यही मत पूछो । मर कर भी सारी बात बता नहीं सकूंगा ।

वह ध्यानपूर्वक सुनती रही । धीरे से बोली:—'उठो राम, मैं तुम्हें पहुंचा आती हूँ । तुमने जो कुछ किया, अच्छा ही किया । तुम जैसा आदमी जीजी के लायक नहीं है । शायद जीजी को इतनी बड़ी चीज चाहिए भी नहीं । तुम्हें जो चाहिए, वह यहां नहीं है । इसी प्यास को लेकर किसी दिन तुम गौरवशाली हो सकोगे ।'

—सोना तुम ?

—मैं भी नहीं राम । मैं भी नहीं । चलो उठो । तुम्हारे लिए आराम का प्रबन्ध किये देती हूँ । आओ ।

सोना का सहारा लेकर उठ खड़ा हुआ । नीचे कार खड़ी थी । दरवाजा खोल दिया । कहा, बैठो ।

वह खुद ड्राइव कर रही थी ।

चलती कार में पीछे छूटने वाली आलीशान इमारत की ओर देखा । आज तक यहाँ मेरी उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा की जाती थी । आज के बाद मे यहाँ मेरी स्मृति भी नहीं रह जायगी । किसी तरह का कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा ।

ऊपर की खिड़की से मृणाल ने झाँका । नजरें मिलीं । मैंने मिर झुका लिया । वह अहश्य हो गयी ।

सोना ने गीयर बदला । कार पार्क का चक्कर काट कर आगे बढ़ गयी ।

बारह :

सोना ने मेरे लिए एक होटल का साफ-सुथरा कमरा पसन्द किया । मन और शरीर की थकान से हाग हुआ, जाने ही पलंग पर लेट गया । आँखें मूंद लीं ।

सोना ने मैनेजर से मिलकर सारी बातचीत की ।

आकर मुझसे कहा, एक महीने का पूरा इन्तजाम कर आयी हूँ । किसी तरह की तकलीफ नहीं होगी । आवश्यकता हो तो मुझे फोन करना । जहाँ भी और जैसी भी होऊँगी, चला आऊँगी । कसम खाकर कहो, संकोच नहीं करोगे ।

विश्वास दिलाया, नहीं करूँगा ।

मेरे लालट पर हाथ रखकर कहने लगी, अभी भी बुरा है । कुछ दिन तक पूरी तरह से आराम करना । शाम को डाक्टर आयेगा । पास में कोई न

हो तो दवाओं के साथ अन्याय मत करना। किसी के बारे में कुछ भी मत सोचना। आखिरी बात यह कि ठीक होते ही खुद को स्टैब्लिश करने की कोशिश करना।

सोना के उन उपदेशों में अपनी बात मनवाने के बनिस्पत मेरी आवश्यकताओं के प्रति सतर्कता और चिन्ता ही अधिक थी। यह शायद इसलिए लगा हो कि मैं भी ठीक यही सोच रहा था। प्रार्थना की:—‘कभी-कभी समय निकाल कर आना। सुध लेती रहना।’

—आऊंगी। आऊंगी क्यों नहीं ?

—एक बात पूछें सोना ? बुरा मत मानना। एक दिन ऐसा ही कड़वा-सा सवाल मैंने अन्नपूर्णा-मां से भी पूछा था। लेकिन प्रत्युत्तर पाकर दुखी नहीं हुआ। इसलिए कि अपनी ठीक सीमा और सही स्थिति जान गया।

--कहो।

—सच बताना सोना। तुम्हारी इतनी कृपा और ममता इस अभागे पर क्यों है ? मेरे भाग्य का इतना जोर तो हो नहीं सकता।

—जो अपने इतिहास को दुहराना नहीं चाहता, राम। उसे दुख देकर पूछना भी नहीं चाहिए।

—‘नहीं’ कहोगी, तो नहीं पूछूंगा।

—सुनो। बताऊंगी। तुम हंसी नहीं उड़ाओगे, यह जानती हूँ।

स्थिर-दृष्टि से मेरी ओर देखती हुई बोली:—‘सच राम, तुमसे बहुत दूर हूँ मैं। फिर भी तुम्हें कष्ट में देखती हूँ, तो दुख होता है। तुम कारण जानना चाहते हो, इसलिए मोटे रूप से जो जानती हूँ, वही कहूंगी :

‘आज उस बात को आठ महीने से अधिक नहीं हुए होंगे। ओह, किस तरह यह अर्सा चुपचाप गुजर गया ! मेरे एक मित्र थे। कुणाल वंशोपाध्याय। बंगाली थे। डाक्टर। सोचते थे, हम एक दूसरे के लिए ही हैं। विवाह हो जाय, इसके लिए किसी की असहमति नहीं थी। असाधारण होने का दावा मेरा कभी नहीं था। इसलिए सीधी तरह से ब्याह कर लेना चाहती थी। वे तैयार हो गये। लेकिन जाने क्यों, उनके परिवार वालों ने इजाजत नहीं दी।

‘इसी बीच एक दुर्घटना के कारण उनका सिर फूट गया।’

कहते कहते सोना की आंखें छलछला आयीं।

‘उन्हें किसी छोटी अस्पताल में भर्ती कर दिया गया। एक्स-रे मशीन तक वहां नहीं थी। अन्त तक डाक्टर अनुमान नहीं लगा सका कि खतरनाक

-सोना तुम ?

-मैं भी नहीं राम । मैं भी नहीं । चलो उठो । तुम्हारे लिए आराम का प्रबन्ध किये देती हूँ । आओ ।

सोना का महारा लेकर उठ खड़ा हुआ । नीचे कार खड़ी थी । दरवाजा खोल दिया । कहा, बैठो ।

वह खुद ड्राइव कर रही थी ।

चलती कार में पीछे छूटने वाली आलीशान इमारत की ओर देखा । आज तक यहाँ मेरी उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा की जाती थी । आज के बाद से यहाँ मेरी स्मृति भी नहीं रह जायगी । किसी तरह का कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा ।

ऊपर की खिड़की से मृणाल ने झाँका । नजरें मिलीं । मैंने सिग्नल झुका लिया । वह अदृश्य हो गयी ।

सोना ने गीयर बदला । कार पार्क का चक्कर काट कर आगे बढ़ गयी ।

बारह :

सोना ने मेरे लिए एक हॉटल का साफ-सुथरा कमरा पसन्द किया । मन और शरीर की थकान में हाग हुआ, जाने ही पलंग पर लेट गया । आँखें मूंद लीं ।

सोना ने मैनेजर से मिलकर सारी बातचीत की ।

आकर मुझसे कहा, एक महीने का पूरा इन्तजाम कर आयी हूँ । किसी तरह की तकलीफ नहीं होगी । आवश्यकता हो तो मुझे फोन करना । जहाँ भी और जैसी भी होऊँगी, चली आऊँगी । कसम खाकर कहो, संकोच नहीं करोगे ।

विश्वास दिलाया, नहीं कहूँगा ।

मेरे लालट पर हाथ रखकर कहने लगी, अभी भी बुरा है । कुछ दिन तक पूरी तरह से आराम करना । शाम को डाक्टर आयेगा । पास में कोई न

हो तो दवाओं के साथ अन्याय मत करना। किसी के बारे में कुछ भी मत सोचना। आखिरी बात यह कि ठीक होते ही खुद को स्टेब्लिश करने की कोशिश करना।

सोना के उन उपदेशों में अपनी बात मनवाने के बनिस्पत मेरी आवश्यकताओं के प्रति सतर्कता और चिन्ता ही अधिक थी। यह शायद इसलिए लगा हो कि मैं भी ठीक यही सोच रहा था। प्रार्थना की:—‘कभी-कभी समय निकाल कर आना। सुध लेती रहना।’

—आऊंगी। आऊंगी क्यों नहीं ?

—एक बात पूछें सोना ? वुग मत मानना। एक दिन ऐसा ही कड़वा-सा सवाल मैंने अन्नपूर्णा-मां से भी पूछा था। लेकिन प्रत्युत्तर पाकर दुखी नहीं हुआ। इसलिए कि अपनी ठीक सीमा और सही स्थिति जान गया।

—कहो।

—सच बताना सोना। तुम्हारी इतनी कृपा और ममता इस अभागे पर क्यों है ? मेरे भाग्य का इतना जोर तो हो नहीं सकता।

—जो अपने इतिहास को दुहराना नहीं चाहता, राम। उसे दुख देकर पूछना भी नहीं चाहिए।

—‘नहीं’ कहोगी, तो नहीं पूछूंगा।

—सुनो। बताऊंगी। तुम हंसी नहीं उड़ाओगे, यह जानती हूँ।

स्थिर-दृष्टि से मेरी ओर देखती हुई बोली:—‘सच राम, तुमसे बहुत दूर हूँ मैं। फिर भी तुम्हें कष्ट में देखती हूँ, तो दुख होता है। तुम कारण जानना चाहते हो, इसलिए मोटे रूप से जो जानती हूँ, वही कहूँगी :

‘आज उस बात को आठ महीने से अधिक नहीं हुए होंगे। ओह, किस तरह यह अर्सा चुपचाप गुजर गया ! मेरे एक मित्र थे। कुणाल बंधोपाध्याय। बंगाली थे। डाक्टर। सोचते थे, हम एक दूसरे के लिए ही हैं। विवाह हो जाय, इसके लिए किसी की असहमति नहीं थी। अमाधारण होने का दावा मेरा कभी नहीं था। इसलिए सीधी तरह से ब्याह कर लेना चाहती थी। वे तैयार हो गये। लेकिन जाने क्यों, उनके परिवार वालों ने इजाजत नहीं दी।

‘इसी बीच एक दुर्घटना के कारण उनका सिर फूट गया।’

कहते कहते सोना की आंखें छलछल आयीं।

‘उन्हें किसी छोटी अस्पताल में भर्ती कर दिया गया। एकम-रे मशीन तक वहां नहीं थी। अन्त तक डाक्टर अनुमान नहीं लगा सका कि खतरनाक

हमरेज है। माधारण घाव मान कर ही उपचार होता रहा। खबर मिलते ही दौड़ी-दौड़ी मैं वहां गयी। रक्त काफी निकल चुका था। तुरन्त जे० जे० हास्पिटल ले गये। डाक्टर ने बताया, ताजे खून की जरूरत है। मैंने अपना खून लेने की प्रार्थना की। उन्होंने मेरा रक्त ले लिया। प्रतिकूल नहीं था। लेकिन जब 'वे' जरा होश में आये, तो उन्होंने मेरा खून लेने से इनकार कर दिया। कहने लगे, 'अभी तक तुम्हारे खून पर मेरा अधिकार नहीं हो सका है, सोना।'।

'मैं रोती रही। क्या कहती? वे फिर बेहोश हो गये; और बाद में कभी होश में नहीं आ सके। किसी की मौत अधिक चिन्तनीय नहीं होती, राम। लेकिन किसी अपने की मौत बड़ी दुखदायी होती है, यह उस दिन ही जाना। जीवन में गहरी दिलचस्पी लेने का मैंने अभ्यास किया है। इसलिए उस दुख को भूल जाना चाहती हूं। कभी-कभी लगता है, भूल गयी हूं। लेकिन जब कभी देखती हूं किसी को अपने अहंकार में दुख पाते, तो रहा नहीं जाता। कुणाल याद आ जाते हैं। इतनी ही बात है।'।

—अब चलूंगी।

मेरे किसी उत्तर को मुने बिना, आंचल में मुंह छिपा कर वह चली गयी।

यह सोना है! इस रूप में कभी जाना नहीं था। एक की मृत्यु के कारण हर व्यक्ति के प्रति उसके मन में उतनी ही कठुणा है, उतना ही निष्फल समर्पण! हे प्रभो, ऐसे लोग इसी दुनिया में रहते कैसे हैं?

सोना के प्रबन्ध के अनुसार सन्ध्या के समय डाक्टर हाजिर हो गया। दवा लिख कर दे गया। प्रिस्क्रिप्शन्स लेकर होटल का चपरासी जाकर दवाएं ले आया। हिदायत के अनुसार पी लीं। दो-एक दिनों में बुखार कम हो गया। नयी जिन्दगी और नये उत्साह के साथ स्वस्थ होकर मैं उठ खड़ा हुआ।

निश्चय किया, कि अब किसी से, किसी तरह का अपेक्षात्मक सम्बन्ध नहीं रखूंगा। एक अच्छे भले नागरिक की तरह कोशिश करूंगा, कि अधिक कमा सकूं। अच्छे स्तर से रह सकूं। जिसे लोग 'सुख' कहते हैं, भोग सकूं।

ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा की व्यर्थता का बोध भी होने लगा। सोचता, क्यों न पत्नी आये, क्यों न बच्चे हों? क्यों न आदमी अपने संक्षिप्त धेरे का

संतोष प्राप्त कर, जीवन-यात्रा समाप्त कर दे ? दुनिया में हजारों लोग ऐसा ही तो करते हैं; वे कोई अपराध नहीं करते। बल्कि यही व्यवस्था है, यही परम्परा है। इसलिए यह अनुचित भी नहीं। इसी से किसी की सेवा होती हो, तो हो। न हो पाती हो, तो मैं ही क्यों अपने को शहीद कहूँ ?

पड़ौस में रहने वाले एक महाशय से इन्हीं दिनों परिचय हुआ। किसी फैक्ट्री के कैन्टीन-मैनेजर थे। बड़े दिलचस्प आदमी। औरतों के बारे में उनका ज्ञान इतना प्रशस्त; कि लगातार तीन दिन तक इसी विषय पर लेक्चर दे सकें। उन्हीं के यहां एक दिन अमरीका के कार्टूनिस्टों का इतिहास देखा। कार्टूनों का संग्रह था। इस कला की प्रशस्ति और मूल्यांकन भी। मन लगा कर पढ़ गया। उक्त पुस्तक अमरीका के भारत स्थित दूतावास की ओर से संचालित यू०एस०आई०एस० लायब्रेरी की थी। यह संस्था मुफ्त में पढ़ने के लिए पुस्तकें देती है। अमरीका के विषय में भारतवासी अधिक से अधिक जान जायं, यही इसका लक्ष्य है। इसलिए भारत-वासी उन पुस्तकों का सही उपयोग करते ही हैं। उदाहरण के लिए मेरे उक्त मित्र महोदय ने यह मान कर, कि इस पुस्तक में मेरी दिलचस्पी है, मुझे भेंट कर दी। उनका ऐसा कहना था, कि न लौटाने पर भी अमरीका की बहुत बड़ी हानि नहीं होगी। वे तो सब परोपकारी हैं। सब को कर्ज देने वाले ! शर्त भी कितनी सरल और सुनहली है 'पेयेबल, व्हेनेबल' जब होगा, तब दे देंगे !

खैर, यू०एस०आई०एस० और अपने मित्र दोनों के प्रति मैं कृतज्ञ ही हुआ।

सोचा, कार्टूनिस्ट बन कर अपने आप को स्टेब्लिश कर सकूंगा। इस तरह से समाज तथा राष्ट्र की सेवा भी कर लूंगा। सो कार्टूनिस्ट बनने का निश्चय किया। अधिक कठिन नहीं था। पैसा मिलेगा, यह उम्मीद हुई। यहां विशाल क्षेत्र है, इसका ज्ञान भी हुआ।

लेकिन आज तक राजनीति से इस गरीब का कोई सम्बन्ध नहीं रहा। हास-परिहास क्या होता है यह भी कभी नहीं जाना। बिना इन दोनों चीजों के कार्टूनों का बाजार में क्या मोल होगा, यह जानकर कुछ हतोत्साहित-सा हुआ। लेकिन आदत के अनुसार पिल पड़ा तो दिन भर सम्पादकीय लेख, अन्य सामयिक लेखों, समाचारों और कार्टूनों को ध्यानपूर्वक पढ़ गया। पांच-सात कार्टून बनाये। पहला प्रयास था। शायद बहुत अच्छे न बन पाये हों। लेकिन

बुरे भी नहीं थे। ऐसे तो थे ही कि पांच-सात कार्टूनों के बीच रख दिये जायं, तो छिप जायं।

पिछले दिनों एक बार सोना आयी थी। मेरे लिए अपनी पसन्द के कपड़े सिला लायी। सम्भवतः अपने प्रेमी के प्रति मेरे माध्यम द्वारा यह श्रद्धांजलि थी। एक ऊनी स्वेटर भी था, हाथ का बुना हुआ।

कह रही थी कि पिछले हफ्ते वह बहुत व्यस्त रही। सोचा, कि स्वेटर बुनने को उसे समय कहां मिला होगा? विचार आया कि मृणाल की भेंट तो नहीं? लेकिन इस सोचने का कोई आधार नहीं था। चाहती तो मानवीय सम्बन्धों का हवाला देकर, फोन से मेरे स्वास्थ्य के हाल तो पूछ ही सकती थी। इससे उसकी मर्यादा कम नहीं हो जाती। खैर।

सोना जब तक मेरे पास बैठी रही, अपने कुणाल के बारे में ही बातें करती रही। वह कैसा था, उसे कैसे कपड़े पसन्द थे, वह किस तरह भोजन करता। भोजन में उसे क्या-क्या पसन्द था। उसके साथ वह कहां-कहां घूमने गयी थी। उस समय वे आपस में क्या बातचीत किया करते थे। कहते कहते वह कभी शर्माती, कभी रोती, कभी प्रसन्न होता। जैसे स्वप्न में खो जाती।

कुल मिला कर यही—कुणाल अद्वितीय था। असाधारण था। मैं उसकी मित्रता को, सोना की कृपा को समझने की कोशिश करता। किसी भी अंगल से उसकी आलोचना न हो जाय, इसका ध्यान रखता।

उस दिन मैंने पूछा, 'सोना, यदि कार्टूनिस्ट बन जाऊं, तो कैसा रहे? देखो ये कार्टून बनाये हैं। तुम्हें पसन्द आ गये, तो समझ लूंगा—समर्थ हूं।

प्रसन्न होकर कहने लगी, बहुत अच्छे हैं! देश की सेवा होगी। अपनी भी।

उस दिन हमने साथ ही खाना खाया। उसने पूछा, नीला के बारे में कुछ मालूम हुआ? क्या हाल हैं उसके?

—नहीं जानता। जानना चाहता भी नहीं। अब सारे व्यतीत को भूल कर भावी बनाना चाहता हूं।

शायद वह कुछ कहना चाहती थी। चुप हो गयी।

सोना अनजाने में ही अभिभावक हो गयी थी। स्वीकृति की मोहर मेरी ओर से लग गयी।

प्रयत्नों के प्रति मेरी निष्ठा जागी। दूसरे दिन कार्टूनों का बंडल था मे एक अखबार के दफ्तर में पहुंचा। प्रधान सम्पादक कोई अंग्रेज थे। भले आदमी। कार्टून उन्हें पसन्द आये। अगले रविवारीय अङ्क में छापेंगे, ऐसा आश्वासन मिला। कुछ पैसे भी मिलेंगे—यह भी बताया। साथ ही उन्होंने अफसोस प्रकट करते हुए कहा, 'वे नियमित रूप से मेरी सेवाओं को फिलहाल इसलिए नहीं ले सकेंगे, कि उनका अपना स्टाफ-कार्टूनिस्ट है।' मेरी मदद करने के लिहाज से उन्होंने अन्य अखबारों के कुछ पते और उनके सम्पादकों के नाम पत्र लिख दिये कि उनसे मिलूं, तो शायद कोई अवसर मिल जाय।

मेरे लिए इतनी आशा भी काफी मे अधिक थी। उनका अधिक समय बर्बाद नहीं किया। अभिवादन करके चला आया। शेष कार्टून देने के लिए किसी दूसरे अखबार का दरवाजा नहीं खटखटाया।

पहला कार्टून इस तरह प्रकाशित हुआ। लोगों ने पसन्द किया है, ऐसा प्रधान सम्पादक महोदय ने ही बताया था। पृच्छा, कहीं और गया या नहीं?

मैंने कहा, जा नहीं सका। संकोच-सा होता है। आपके यहां ये छप तो रहे ही हैं। किसी को पसन्द आये तो शायद कोई बुला ले।

—संकोच से कोई काम चलता है? मेरी चिट्ठियां लेकर मिलना। मैंने फोन पर बात भी की है। शायद तुम्हें अच्छा काम मिल जाय।

चिट्ठियां ले लीं।

दूसरे दिन सुबह उठते ही कागज पेंसिल और कूची संभाली। चार कार्टून बनाये। दूसरे समाचार पत्र के दरबार में हाजिर हुआ। सम्पादक महोदय ने कार्टून पसन्द किये। लेकिन आर्थिक-हीनता का लम्बा-चौड़ा इतिहास बताने के बाद इस निष्कर्ष पर आये कि तीन रुपये प्रति कार्टून पुरस्कार देने की अभी तक उनकी सामर्थ्य है। मैंने यही मंजूर कर लिया। बिना इतनी भूमिका के भी स्वीकार कर सकता था। निश्चय यह हुआ कि नियमपूर्वक उन्हें कार्टून दे जाया कलंगा। महीने के अन्त में हिसाब हो जायगा।

एक और सम्पादक महोदय से मिला। कुछ डिजाइनिंग का काम मिल गया। सन्तुष्ट होकर आ गया।

सफलता की सूचना सोना को देना चाहता था। फोन किया। मृणाल भी। नाम पूछा, बता दिया। कहने लगी, सोना तो नहीं है। मृणाल हूं।

हड़बड़ाहट में मैंने इतना ही कहा, नमस्कार।

और फोन रख दिया ।

तीन-पत्रों के कण्ट्राक्ट्स के पश्चात् इतना समय नहीं रह गया कि आकाश की ओर मुंह किये पड़ा-पड़ा सोचता रह सकूँ । स्वाभाविक रूप से सोना, मृणाल, नीला सबको धीरे-धीरे भूल सा गया ।

पैसे मिले । शोहरत भी मिली ।

सोना आती, तो उसके सामने इन दोनों चीजों का जिक्र करता । अब वह अपने कुणाल के बारे में कुछ कह नहीं पाती । शायद सोचती, कि कुणाल होता, तो इसी तरह बात करता ।

इसी बीच एक प्रसिद्ध अंग्रेजी अखबार के सम्पादक से मैंने शहर में होने वाले विभिन्न उत्सवों के 'एट इ स्पाट-कैरिकेचर' बनाने के विषय में बात की । भारतीय पत्रकारिता में यह नूतन प्रयोग था । उन्होंने स्वीकार कर लिया । खुश भी हुए । मन को उलझाने का एक और मौका मिल गया । दिन भर सांस्कृतिक-उत्थान के लिए किये जा रहे अनेकानेक महोत्सवों में बैठा स्कैचेज बनाया करता । नेताओं की उन चिन्ताओं को सुनता, जो वे देश के नागरिकों के बारे में किया करते हैं । फोटोग्राफ्स की तरह उनके स्कैचेज उसी समय बनाता । दौड़ कर अखबार में दे आता । जहाँ फोटो के ब्लाक बनाने का समय भी नहीं रहता, वहाँ सजीव स्कैचेज तैयार हो जाते । जहाँ भी उपस्थित होता, वहाँ के लोग मेरी ओर देखकर अधिक सजग हो जाते, अटेंशन में हो जाते । यह सब अच्छा ही तो लगता । अपने इस काम के पीछे इतना पागल हो गया कि रात दिन इसी में व्यस्त रहता । न खाने का पता, न सोने का । न नहाने का, न घर जाने का ।

दिन प्रतिदिन होने वाली घटनाओं को मद्दे-नजर रखने के लिए अखबार पढ़ने पड़ते । दूसरों के कार्टून देखता । अपने कार्टूनों से तुलना करता । हीनता महसूस होती, तो दूने उत्साह से फिर काम में लग जाता ।

कभी सोचता, नीला ठीक ही कहती थी; राष्ट्र-पुत्र, युग-नायकों की श्रेणी में बैठने लायक इसी तरह एक दिन हो सकूँगा । जो कहना चाहता हूँ, उसे सशक्त स्वर में कह सकता हूँ । कहला भी सकता हूँ । यह शक्ति कम नहीं । काश ! नीला यह समाचार सुन ले । एक बार खुद को देखकर वह शर्म से झुक जाय । तब मैं उसे कहूँ, आओ अब तुम्हें शरण दे सकता हूँ !

ऐसा अहंकारी हो गया था। उन दिनों की बात।

भूल-सा गया कि अनाथ हूं। कटुतम स्थितियाँ याद नहीं आतीं। मृणाल को याद करना जहरी नहीं लगता। नीला को याद कर, अपनी उस निरीह स्थिति की कल्पना कर के संकोच होता। एक दुसह्य, पर मोहक स्वप्न की तरह वह याद आती। मिलने के लिए अदम्य व्याकुलता होती। लेकिन सफाई देनी होगी, यह जानता था। थी नहीं, इसलिए जा नहीं सका। गोचता, कितना कम फासला है हम दोनों के बीच। लेकिन कितना अन्तराल लिये हुए।

एक बार दूर से उसे सकुशल देख आया था। रुपयों की कमी नहीं थी। देना चाहता था। कैसे दूं, यह समझ नहीं पाया। हम दोनों एक दूसरे के साथ निर्वाह नहीं कर सकते, इसे मैंने अन्ततः स्वीकार कर लिया था। इसलिए कोई ऐसी चेष्टा नहीं करना चाहता था, कि जीवन से सम्बन्धित होकर कोई समस्या विराट बनकर मुझे अपने आप में समेट ले।

एक दिन एक कन्सर्ट से स्केच बनाकर लौटा ही था। होटल का बैरा और मालिक अब सलाम करने लगे हैं। सम्भवतः कुछ ही दिनों में मेरे कमरे में अलग फोन की भी व्यवस्था हो जायगी।

एक लड़का मुझे पूछता हुआ आया। उसके हाथ में एक चॉकलेट का पैकेट था। मेरे किसी कार्टून को देखकर उसके पिता को बड़ी खुशी हुई है, इसलिए उन्होंने यह मेंट भेजी है; ऐसा उसने कहा। मैंने पैकेट रख लिया। सहज ही उस लड़के का स्केच बनाकर, उस पर अपने हस्ताक्षर करके उसे दे दिया।

बहुत खुश होकर वह चला गया।

थक गया था। सोना चाहता था। नींद आ नहीं रही थी। सामने दीवार पर नजर गयी। सूनी-सी लगी। आज ही नहीं, पहले भी वह ऐसी ही थी। अचानक विचार आया, मृणाल का चित्र यहां होता तो अच्छा होता।

उठा। बाहर आकर टैक्सी की। मृणाल के घर की ओर गया। अब राम वह नहीं है, जिसके प्रति सहज आकर्षण मात्र ही हो। वह अब धनवान ऐश्वर्यवान, प्रतिष्ठाप्राप्त व्यक्ति है। अब सिर्फ भावुकता की बात ही नहीं, व्यावहारिक बात भी कहेंगे। ब्याह का प्रस्ताव रखना भी बुरी बात नहीं। एक मीधी-सादी स्त्री के रूप में वह बुरी नहीं। बल्कि मुन्दर है, और ऐसी है कि एक आर्टिस्ट को जैसी चाहिए।

माँ-अन्नपूर्णा के यहाँ जाने का विचार आया । पर गया नहीं । सोचा, चला जाता तो माँ अधिक शर्मिन्दा होने से बच जाती । कीर्ति सुनती, तो गले से लगाकर जो कुछ हो चुका है, उसके लिए रो-धो कर मन का बोझ हलका कर लेती । लेकिन पुरानी बातें याद आये, यह ठीक नहीं लगा । इसलिए वहाँ नहीं जा सका ।

मृणाल के यहाँ भी गया नहीं । टैक्सी-ड्राइवर से कहा, चौपाटी से होता हुआ मलाबार चले । रास्ते में नीला के मकान की ओर देख गया । वह गलियारे में खड़ी थी । देख कर जोर से चिल्लाया, 'जरा तेज चलाओ भाई । जरा तेज ।'

ड्राइवर ने टैक्सी की रफ्तार तेज कर दी । माथे पर पसीना चू आया । पोंछ कर वापस होटल चलने के लिए कहा ।

सोचा, नीला से मिल लेता, तो इतना तो कह ही देता कि 'नीला इस राम की चिन्ता से अब तुम मुक्त हो । स्वतंत्र हो, कि मैं तुम्हारा आलोचक नहीं । जो चाहो, करो । चाहो तो वापस न्यूड-मॉडेल बन सकती हो । वेश्यावृत्ति करोगी, तो भी तुम्हें अपमानित करने के लिए नहीं आऊँगी ।' अपने सम्पूर्ण अहंकार को मूर्तिमान कर, उसके सामने रख कर अप्रत्यक्ष रूप से उसे प्रताड़ित करने की लालसा बारम्बार दिमाग में चक्कर लगा रही थी ।

होटल पहुँचा तो टैक्सी का बिल चुका कर ऊपर चला गया ।

बिछौने पर लेट गया ।

अर्द्ध-निन्द्रित था कि होटल के वेटर ने आकर उठाया । कहा, आपसे मिलने के लिए कोई स्त्री आयी है ।

पूछा, कौन है ?

-यह तो मालूम नहीं, साहब ।

जान गया कि सोना नहीं है । मृणाल हो सकती है । पर उसका आना शुभ हो सकता है, इसमें सन्देह है । कुछ कठोर होकर बोला, कह दो, सो रहा हूँ । फिर कभी आये ।

वह चला गया । एक मिनिट के बाद ही वापस आकर कहने लगा उसने अपना नाम नीला बताया है । कहती है, 'थोड़ी देर मिल कर चली जाऊँगी ।' ले आऊँ, साहब ?

अन्तिम बात उसने कुछ इस तरह से पूछी, मानों सिफारिश कर रहा हो। मैं अप्रतिभ-सा बैठा रहा। अपने को व्यवस्थित करते हुए कहा, 'ले आओ। आते समय दो कप चाय भी ले आना।'

नीला आयी है, यह जान कर मेरा मन-मस्तिष्क उत्तेजित-सा हो गया। अभ्यर्थना के लिए दरवाजे तक आया।

नीला को करीब से देख कर मुन्न रह गया। पीली पड़ गयी थी। दुबली हो गयी थी। देखकर डर लगता था। करुणा आती थी। लाल लफर ओढ़े वह आयी। लज्जा और संकोच के मारे अपराधी की तरह भौंचक्का-सा उसे देखता रहा।

वह मेरे ठीक सामने आकर खड़ी हो गयी। पूछा, राम इसे पहचानते हो ?

-बैठो। जानता हूँ।

-दो बातें कहने आयी हूँ। रहा नहीं गया, इसलिए। सुन लेंगे तो चली जाऊँगी। तुम्हारे आराम में खलल नहीं डालूँगी।

-हाथ जोड़ता हूँ नीला। बैठ जाओ।

-नहीं। मुझे अभी ही वापस जाना है।

उसने वाडिस के नीचे से एक लिफाफा निकाला। मेरी ओर बढ़ा कर कहने लगी, 'याद है, तुम्हारे रुपये मेरे पास रह गये थे। रख लो। यही देने आयी थी।'

मैं ठगा-सा उसकी ओर देखता रहा। भांगे कंठ से कहा, वे रुपये तो तुमने पुलिस वालों को दिये थे न ? मुझे देखने के लिए वहाँ जो आयी थी।

-वह मेरा अपना स्वार्थ था। रहा नहीं गया, सो चली आयी थी। अब जानती हूँ, तुम्हारे रुपये अपनी इच्छा से नहीं खर्च कर सकती। इसीलिए लौटा रही हूँ। ले लेंगे, तो मुझे संतोष होगा।

मैंने पूछ लिया, और ये रुपये कहाँ से आये ?

-यह भी पूछना चाहते हो ? जानते हुए भी, जिसे एक बार बहन कहा है, उसी से कहलवाना चाहते हो ? छिः छिः। इतना दुख मत दो।

-नीला बहुत देर हो गयी है। हमारा अन्तराल अब स्पष्ट हो गया है। तुमने मुझे अपने पास रखना चाहा नहीं। बड़ी मुश्किल से मैंने अपने को संभाल कर ऐसा बनाया है कि अकेला, तुम्हारे बिना रह सकूँ। अब यही रहने

दो । उन बातों को याद मत दिलाओ ।

—मैं रखना नहीं चाहती राम, तो कोई आरोप नहीं लगाया जा सकता । लेकिन रखना चाहकर भी नहीं रख सकी, यही भाग्य की बात है । तभी तो तुम जेल से छूटकर मेरे पास नहीं आये ।

—मैं आया था ।

—और फिर लौट गये ? सब जान चुकी हूँ । बीमार पड़कर भी तुमने मुझे नहीं बुलाया । किसी ने आग्रह किया तो उसे चुप कर दिया । ऐसे तो तुम नहीं थे । होओगे, यह कल्पना भी नहीं की थी ।

—उस दिन पागल हो गया था । कारण थे, इसलिए हुआ था । मैं तुम्हारे यहाँ रात को उस समय पहुँचा, जब मुझे नहीं पहुँचना चाहिए । मेरे अतिरिक्त और कोई वहाँ था । शायद दोनों में से कोई एक, मेरी उपस्थिति से नाराज होता ।

—वह गलत था, यह सफाई देने नहीं आयी हूँ । कहने यह आयी हूँ, कि उस दिन रुपये नहीं मिलते, तो तुम छूटते कैसे ? रिश्तत पाप है । देने और लेने वाले दोनों के लिए ही । इसीलिए तो दंड भोगना पड़ा ।

—नीला, मैं चीख-सा उठा 'इस तरह छुड़ाने के बनिस्पत मुझे मर जाते देख लेती, तो अधिक सुख मिलता । बनिस्पत इसके कि जिन्दा रह कर वह सब देखू.....'

—इसीलिए तो तुम्हारी चीज तुम्हें लौटाने आयी हूँ । अब कभी दुख नहीं दूंगी । जो तुम चाहते थे वह हो नहीं सका । जो मैंने किया, वह तुमसे देखा नहीं गया । विधाता ही प्रतिकूल था । किसी को क्या कहूँ ? लेकिन जो विरोध है उसे भ्रम में रख कर अपने आप पर अधिक अत्याचार अब नहीं किया जाता । सो एक बार तुम्हें देख लें; इसीलिए चली आयी ।

कड़ी आवाज में उसने कहा, लो !

मंत्र-सम्मोहित से मेरे हाथ आगे बढ़ गये । लिफाफा ले लिया ।

वह मुड़ कर जाने लगी, तो होश आया । दरवाजे पर दोनों हाथ फैला कर, रास्ता रोकते हुए मैंने कहा, 'नीला । यह तुम्हारा वही राम है । इसकी गलती को माफ़ कर दो । विधाता प्रतिकूल नहीं है, नीला । इसीलिए तो घूम-फिर कर हम उसी सर्किल पर आकर फिर मिल जाते हैं । अब सारी सम्भावनाएं

और स्थितियाँ बदल गयीं हैं। यदि मैंने गलती की है, मुझे मारो। पीटो। जो चाहे करो। लेकिन इस तरह छोड़कर मत जाओ।

—सोच रही थी राम, कि जो कुछ मैंने किया वह राम के लिए; अपने राम के लिए किया है, इसलिए वह पाप नहीं है। लेकिन जाना कि यह अपने लिए था, तो पश्चाताप की सीमा नहीं रही। बिगत पाप इतना अधिक कुन्मित और घृणित हो गया है कि अब बर्दाश्त नहीं होता।

किम तरह नीला को रोकूँ, समझ नहीं सका। हाथ फैल ही रह गये। आंखों के आँसू प्रार्थना करते रहे, 'रुक जाओ। रुक जाओ।'।

उमने उसी तरह दृढ़ स्वर में कहा, रास्ता छोड़ दो।

मैंने विनती की, 'नीला नहीं। नहीं नीला। रुको।'।

वह आगे बढ़ती गयी।

मैं बिखर गया। कहा, नीला तुम चली गयी तो समझ लेना, राम की लाश पर कदम रख कर जाओगी। कसम की ही बात नहीं कह रहा हूँ। एक दिन आत्महत्या की तुमने निन्दा की थी। अब जब तुम चली जाओगी तो यह मत सोचना कि मैं भावावेश का मारा विजली के करेंट को हमेशा के लिए झू नहीं डालूँगा।

जैसे वह डर गयी हो। लेकिन उमके कदम आगे बढ़ गये।

मैं उन्नेजित-सा प्लग के पाम जाकर खड़ा हो गया। कहा, 'जाओ नीला। इस राम की गलतियों को माफ करना।'।

मैंने प्लग में उंगलियाँ डाल दीं।

जोर का झटका लगा और आलमारी से टकरा कर नीचे गिर गया। जिन्दा था, इसीलिए देख सका कि माथे की चोट से बहने वाला खून जमीन पर फैल रहा है।

नीला दौड़ती हुई मेरे पास आयी।

लगा कि जैसे चंद सांसें और शेष हैं। कहा, जाओ नीला।

लेकिन उसका हाथ मैंने पकड़ लिया। शायद उमने समझ लिया कि उसे छोड़ नहीं सकूँगा।

उठाकर मुझे पलंग पर लिटा दिया। कहा, —राम!

हिचकियों के मध्य सम्बोधन डूब गया। मेरी छाती पर मुँह रखे वह फीस पड़ी।

वेटर इस अजीब-सी स्थिति को देख कर भी अनदेखा कर, चाय के प्याले टेबल पर रख, दरवाजा बंद कर, पर्दों को ठीक से संजोकर, चला गया।

नीला कहने लगी, 'एक बार कह दे, राम ! चली जाऊँ। कह दे रे कि पापिष्ठा हूँ। घृणित हूँ। एक बार कह दे तो।'।

मैं मुन्नावस्था में इतना ही कह सका:—मत जाओ, नीला, मत जाओ।

नीला बिखर गयी। उसने अपने बाल नोच डाले। छातियां पीटने लगी। धरती पर लौटने लगी। उस हाय-हाय को, उस प्रलाप को, उस कृष्ण-कन्दन को सुनना कितनी भीषण यंत्रणा थी !

वह कहती रही, 'कितने पाप किये हैं, रे राम मैंने। कितना भुगतना पड़ा। कैसे मुक्ति होगी ? हाय ! सब कुछ संजोकर भी कुछ नहीं पा सकी।'।

'अरे, इस पापविष्ठा के लिए तू आत्महत्या करेगा ? बता तो, अब जीऊँ कैसे, मरूँ कैसे ?

अचैतन्य-सी खामोश होकर, कुछ देर तक वह उसी तरह जमीन पर पड़ी रही। याद आया, एक दिन पुलिस के किसी सिपाही ने इसी तरह इस अबला को उठाकर फेंक दिया था। वह भी इसी राम के कारण; और आज यह पड़ी है उसी राम के यहां, उसी तरहसे अपमानित, लांछित ! सो भी उसी के कारण !

मैं उठा। पानी की गिलास लेकर पास गया। कहा, 'नीला, पानी पी लो। नन्हें-शिशु की भांति विस्फारित नेत्रों से मेरी ओर देखती हुई वह गट-गट पानी पी गयी।

-नीला तुम राजी हो जाओ। जैसा कहोगी, करूँगा। बता दो, तुम्हें कैसे शांति मिलेगी ?

फिर रोने लगी। बोली:—राम, यही तो नहीं जानती, कि अब क्या करने से शांति मिल सकेगी ? सब कुछ तो करके देख लिया। अब करने को शेष रह ही क्या गया ?

अपने अपराधों को याद कर, उत्तर देने लायक मेरे पास कुछ भी नहीं रहा।

पूछा, मेरे पास रह सकोगी नीला ?

-नहीं राम। नहीं। अब तुम्हारे पास कैसे रहूँ ? चाहती थी, एक दिन तुम बड़े आदमी बनो। सो बने। भगवान ने मेरी सुन ली। अब.....।

वह रुक गयी। मेरी ओर देखती हुई उम्मी तरह विलाप करने लगी, 'राम, तुझसे अलग कैसे रहूंगी, सो भी नहीं जानती। और पाम रह सकूंगी, यह विश्वास भी नहीं होता। बता तो, मैं क्या करूँ ?

—मैं बताता हूँ नीला। एक दिन हम दोनों ने इस संसार को छोड़ देना चाहा था। मुझे याद है। चलो, सारे अतीत को भूल कर नये भविष्य के लिए आज हम उस गत-संकल्प को पूरा करें। नये जन्म में मेरा विश्वास है, नीला ! तुम्हीं ने तो आशावादी बना दिया है। चलो उठो। हम चलें। मच मानों नीला, मरने से मुझे डर नहीं लगता। तुम्हारे बिना जीने से डरता हूँ। लेकिन तुम्हें अपने पास प्रताड़ित अवस्था में रखने का अपराध मुझसे होगा नहीं। आओ। ऐसा ही करें।

—नहीं राम। ऐसी बात भी मत सोच। तुझे अभी तक कितना कुछ करना है। खुद के लिए, अपने समाज के लिए ! तू कर सकेगा। मुझे भरोसा है। मरने की बात मत सोच रे। तेरी उमर मरने की नहीं है। मेरे सिर पर हाथ रख कर कह, फिर कभी ऐसी बात नहीं कहेगा !

उसकी बात सुनता रहा। गुत्थी का एक मुलझाव करीब आया था, सो भी छिटक कर दूर चला गया। बोला:—प्रताड़ित और दुखी जीवन को खत्म कर देना भी तो जीवन के प्रति आस्था बताना है नीला !

—नहीं राम। यह नहीं। यह नहीं। यह कायरों का तर्क है। जिन्होंने इस दुनिया में जीना सीखा है, उनके मुँह से ऐसी बात शोभा नहीं देती।

मैंने कहा:—पलायन से मैं भी नफरत करता हूँ नीला। पर यह पलायन नहीं। जीवन का सुखद स्व-चेष्ट अन्त है। ऐसा अवसर कितनों को मिलता है ?

—ब्रह्म मत कर राम। कैसी बात है यह तेरी ? इस जीवन से जो भागता फिरता है। वह दूसरे जीवन में कुछ पा जायगा, यह तुझसे किसने कहा ?

—तो कहो, क्या करूँ ?

—वचन दे, कभी ऐसी कोई हरकत नहीं करेगा !

आत्महत्या नहीं करूँगा, यह वादा किया। कहा, 'लेकिन तुम भी मुझे छोड़कर कहीं मत जाना। देखो तो नीला, तुम्हारे आशीर्वाद में सब कुछ तो है। कहो, हाँ !

नीला ने आंसू पोंछ डाले। बोली, नहीं जाऊंगा राम। कहीं नहीं जाऊंगी। जा भी नहीं सकती कभी। पूर्व-जन्म के ये सम्बन्ध कोई आदमी की हस्ती से टूट सकते हैं रे ? दुनिया के किन अज्ञात कोनों से इस विशाल रंगमंच पर आकर तुम उपस्थित हो गये। यह किमी आदमी की योजना तो नहीं थी राम। किमी दैवी संकेत से ही तो ऐसा हुआ होगा !

-कहो, कि मुझे माफ़ किया।

-तू किमी तरह का दुख मत कर राम। कहती हूं, कि जो कुछ हुआ, वह जरूरी था, इतने दिनों के बाद देख रही हूं कि मेरे कुप्रहों में अलग रह कर तूने कितनी उन्नति कर ली है।

निश्चय हुआ कि वह मुझे अपने आंचल की छांह में ही संभाले रहेगी।

बिना भोजन किये ही अपनी नीला की गोद में सो गया।

सुबह का सुनहला सूर्य उदित हुआ, तो लगा कि मारा कलुष धुल-धुल कर साफ़ हो गया है।

तेरह :

उस रात खूब नींद आयी। देर में उठा। नीला स्नान कर चुकी थी। हमने साथ ही चाय पी। नीला ने कहा : 'राम यह जगह मुझे पसन्द आयी। यहीं चली आऊं ? कपड़ों की एक मन्दूक और कुछ सामान ही तो है वहां। बाकी जो कुछ है, वह वहीं रहे, तो क्या बुरा है ? उस जगह से ही मुझे नफरत-सी हो गयी है। होटल वालों को तो कोई आपत्ति नहीं होगी ?'

मैंने हंस कर कहा, 'होटलवालों की बात भली कही। उन्हें तो पैसों से मतलब है। तुम्हारा राम अब गरीब नहीं है। पैसे देने में समर्थ है।

-अच्छा तो, मैं एक बार वहां जा आती हूं। शुभस्थ शीघ्रम्। लेकिन वादा करो, कि डाक्टर के पास जाकर अपनी करतूत का इलाज तुरन्त करवा लोगे।

-जाऊंगा।

-तो मैं निश्चिन्त होकर चलूँ ?

-आना जल्दी । निश्चिन्त तो मेरे रहते तुम हो ही नहीं सकतीं ।

हंसती हुई वह चली गयी ।

डाक्टर से पट्टी बंधवा लाया । उसने बताया, खून की गति रुक गयी है । कुछ दिन लेप लगवा कर गर्म पानी का सेक करना होगा । विशेष विवरण पूछने पर मैंने यही कहा, कि गलती से करंट से हाथ छू गया । भला आदमी था । सहज ही मान गया ।

पता नहीं यह कैसा मनोविज्ञान है, कि आउने में खुदको पट्टियों से मुग्धजित देख कर बड़ा संतोष हुआ । चाहा कि और अधिक बीमार हो जाऊँ । नीला सेवा में मेरे पास ही बैठी रहे । विछौने पर लेट गया । लगा कि मानों बुखार आ गया है । यहीं सोचते-सोचते सो गया । कुछ कार्टून बनाने थे । दो बार फोन भी आ चुके थे । लेकिन शरीर ठीक नहीं है, यह कह कर टाल दिया । वहम के मारे भोया तो उठा तब, जब कि वास्तव में हरात और भारीपन महसूस होने लगा था । कुछ अच्छा-सा लगा कि नीला आते ही, देखकर कितनी चिन्ता नहीं करेगी !

कितना प्यार, कितना अमित स्नेह !

पांच बज रहे थे । डाकिये ने एक चिट्ठी ला दी । दिल्ली के एक सम्पादक महोदय का पत्र था । मेरे प्रकाशित कार्टूनों की तारीफ थी । मेरे स्वयं के कॉपी-राइट के कुछ कार्टूनों को अपने पत्र में छापने के लिए स्वीकृति मांगी थी ।

उसी समय इजाजत लिख दी । उत्तर देकर नीला की प्रतीक्षा करने बैठ गया । प्रसन्नता के इस अवसर पर इस पत्र का आ जाना बहुत भला लगा । फिर मन ही मन कुछ नाराज-सा होकर लेट गया, नीला अभी तक आयी क्यों नहीं ?

सामने नजर चली गयी । दीवार आज भी हमेशा की तरह सूनी थी । मृणाल का चित्र वहां टांगने की कल्पना करने लगा । सोचा, क्या हर्ज है, यदि मृणाल के विवाह-प्रस्ताव को स्वीकार कर लूँ ? कोई कारण नहीं कि ऐसे मनोकूल ब्याह के लिए मैं अस्वीकृति दूँ । जिस दिन ऐसा हुआ था, उस दिन बुनियाद मजबूत नहीं थी । भावुकता सही थी । लेकिन अब तो वह सब नहीं । स्थिति बदल गयी है । मृणाल ने सोना से सब कुछ जान लिया होगा । शराब के उस

किस्से को भी समझ गयी होगी । शायद दुखी भी हुई हो । लेकिन उस मानिनी की एक बार भी तो मैंने मनुहार नहीं की ।

आज तक जो हीनावस्था महसूस कर रहा था, अब वह नहीं रही । अधिकार और उपभोग की मांग स्पष्ट हो गयी है । कुछ लज्जा इसलिए अवश्य महसूस कर रहा हूँ कि नीला के सामने एक दिन मैंने भीष्म बनने की बात कही थी । लेकिन यह भी जानता हूँ, कि इस समाचार से नीला को ही सबसे अधिक प्रसन्नता होगी । इस कायरता के लिए भर्त्सना नहीं, प्रशंसा ही मिलेगी ।

सो, आज तक का दवा हुआ 'सेक्स' एकबारगी इस बेकदर सामने उपस्थित हो गया कि कितना ही निर्लज्ज बनने की कोशिश क्यों न करूँ, उसे याद करके संकोच से गड़-सा जाता हूँ ।

सन्ध्या होने आयी । माथा भारी था । नीला अभी तक नहीं आयी । प्रमाद गया नहीं । कुछ देर तक खिड़की के पास बैठा जिद्द करके ठंडी हवा का आनन्द लेता रहा । हरारत अधिक महसूस होने लगी तो उठकर फिर बिछौने पर लेट गया । भूख नहीं थी । सो वेटर को मना कर दिया कि खाना न लाये ।

उठा तो सुबह हो आयी थी । आशा थी कि नीला आ गयी होगी । शायद मुझे सोता देख, बिना जगाये नीचे ही सो गयी हो । लेकिन वहाँ थी नहीं । विश्वास नहीं हुआ । गुसलखाने की ओर गया, वहाँ भी कोई नहीं था । चिन्ता-सी हुई, अब तक क्यों नहीं आयी ? कोई खास बात हुई हो तो फोन तो कर ही सकती थी ।

रूठने का-सा उपक्रम करते हुए वापस लेट गया । बुखार ठीक हो गया था । नहीं कह सकता, कि सचमुच दुखार आया भी था या नहीं ! या बहम में ही मैंने २४ घंटे गुजार दिये !

चाय पीकर, टैक्सी से नीला के घर गया । ताला लगा हुआ था । कोई नहीं था । पड़ौस में पूछने गया । इस समय भिर्फ इस बात से आश्चस्त होना चाहता था कि वह यहाँ नहीं है, चली गयी है । बाद में उसे खोजने के लिए सारी बम्बई को छान मारने के लिए कृतसंकल्प था ।

तभी खांसते हुए एक बूढ़े के दर्शन हुए । नम्रता पूर्वक अभिवादन कर मैंने पूछा, 'आपके पड़ौस में नीला रहती थी । वह मकान छोड़ कर चली गयी ?'

प्रश्न सुनकर, निराश-सा होकर, वह वापस अपने कमरे में जाकर एक ईजी-चेयर पर बैठ गया। कहने लगा, 'कौन ? अरे वह नीला ! तुम बहुत दिनों के बाद आये हो बेटा। इतने दिन नहीं आये, यह अच्छा ही हुआ। औरत अच्छी नहीं थी। चलते-फिरते भले आदमियों पर डोरे डालना ही उसका काम था। अपने पापों का फल उसे मिल गया। रहती थी, तो बदनामी के मारे नाक में दम था। मरी भी, तो पूरी तरह तंग करके ही ?

मौत !

एकाएक नीला की मौत बिजली की तरह कौंध गयी। मेरे साथ रहने का उसने वचन दिया था। चुपचाप आकर आत्म-हत्या कर लेगी; और इतनी बड़ी लांछना लेकर वह जायगी ? विश्वास नहीं हुआ। फिर भी चारों ओर फैलते जा रहे इस अंधकार को दोनों हाथों से रोकने की कोशिश करते हुए मैंने व्याकुल कंठ से पूछा, वह मर गयी ? कैसे ? क्या हुआ था ?

वह वृद्धा खांसने लगा। दम लेकर बोला, सो क्या मैं जानता हूँ बेटा ? पुलिस वालों से जाकर पूछो। सुना है, परसों किसी से पैसे लिये थे। कल वह आया तो उसे धके देकर निकाल दिया। बात छिपी-छिपी चलती थी। सो खुल गयी। हम तो बदनामी के मारे सिर उठाने लायक नहीं रहे। लेकिन पाप की गठरी भारी हो गयी थी इसीलिए, सुना है, उसने उसका खून कर डाला !

नीला की मौत की बात को वह इतनी सरलता से कह गया कि क्षोभ के मारे कांपने लगा।

आगे मैंने कुछ भी नहीं सुना। जी किया कि उस बुढ़े का गला घोट दूँ। नीला को उसने वह सब कुछ कह दिया है, जो सर्व-श्रृष्टा परमात्मा भी नहीं कह सकता। यदि आंखों ही आंखों से किसी को पीया जाना संभव होता, तो वह भस्म हो जाता। घृणा से होंठ सिकोड़ कर, अपनी हथेलियों में मुंह छिपा कर मैं धीरे-धीरे नीचे उतर आया।

वह महापात्रा चली गयी और मैं उसके अन्तिम दर्शन तक नहीं कर सका। कल दिन भर प्रमाद में रूठा हुआ बैठा, इन्तजार करता रहा !

आन्तरिक मन लज्जा और पश्चाताप से छिः छिः कर उठा।

एक-बार, केवल अन्तिम बार उस महादेवी के दर्शन करने के लिए मैं अपनी दोनों आंखें भेंट चढ़ा सकता था। सिर्फ एक बार कोई उसके दर्शन करवा दे।

-लेकिन यह कैसे संभव हो ?

-पुलिस के किम आदमी से यह पूछा जाय ?

-कहां से उसे प्राप्त करूं ?

-मुझे सिवाय नीला के कुछ नहीं चाहिए । मरने के लिए भी, जीने के लिए भी । केवल वही !

वह चली गयी । लेकिन वह उस तरह से नहीं जायगी, जैसा कि उस शैतान बूढ़े ने कहा था । वह जायगी, अचल सौभाग्यवती होकर, मेरी बहन होकर । धूमधाम में उसकी शव-यात्रा निकलेगी । मैं उसके आगे नगाड़े बजाता हुआ चलूंगा... सूचना दूंगा, यमराज को; कि तैयार रहो रे, मेरी बहन आ रही है । तुम तो घट-घट की जानते हो, नीला की हर बात को तुम जानते हो । मैं मनुष्य होकर भी उसे कुछ-कुछ समझ सका हूं, तुम तो देवता हो । तुम उसे ऐसी मत समझना, जैसा कि वह बूढ़ा आदमी कह रहा था !

जिस जोगलेकर का मुंह देखना भी मैं पसन्द नहीं करता, उनके ही पास गया । मिल गये । अन्नपूर्णा-मां भी थीं । मैंने उनकी ओर नहीं देखा । जानता था कि उनके कंठ से शत-शत बातें मेरे लिए फूट निकलना चाहती हैं । मैंने रोते हुए इतना ही कहा, 'नीला का किसी ने खून कर दिया । किसने किया, क्यों किया, यह नहीं जानना चाहता । उसके एक बार, अन्तिम बार दर्शन करना चाहता हूं ।'

जोगलेकर मेरे पास आये । पूरी बात पूछने लगे । हिचकियों से भरे स्वर में जो कुछ जानता था, कह गया ।

मुनकर बोले, मैं तुम्हारी मदद करूंगा । आओ मेरे साथ ।

मैं शपथपूर्वक कहता हूं कि उनकी इस कृपा के लिए कभी भी आशीर्वाद देने को तैयार नहीं हूं । नहीं हूं, इसलिए कि उनके बारे में ऊंची नजर करके देखने की हिमाकत मुझमें नहीं है ।

इस एक आदमी के कारण ही आज नीला इस संसार में नहीं है, कि मैं उसे एक आंख से देखने के लिए तरस कर रह जाता हूं !

मुझे लेकर वे पुलिस कोर्ट में गये । मालूम हुआ, कि उस केस से सम्बन्धित खूनी गिरफ्तार कर लिया गया । पोस्टमार्टम हो चुका; डाक्टरी रिपोर्ट तैयार हो गयी । इसलिए आज सुबह ही लाश जला दी गयी ।

अन्तिम बात सुनते-सुनते मैं चीख उठा, 'लाश जला दी गयी ? जानते हो, वह कौन थी ? कौन थी, यह मालूम है तुम्हें ? उसे जला दिया और मुझे बिना पूछे ? अरे राक्षसों, खूनी का पता लगाना जितना जरूरी था, उसमें भी अधिक जरूरी यह था कि उसके भाई का पता लगाते । पोस्टमार्टम के लिए रुका जा सकता था, तो क्या मेरे आने का इन्तजार नहीं किया जा सकता !'

जोगलेकर के साथ होने के कारण मेरी अभद्रता माफ कर दी गयी । मैं विलाप करता हुआ बाहर चला आया । जोगलेकर मेरे पास आकर मुझे पकड़ कर कहने लगे, 'राम चलो, घर चलो । जो हुआ उस पर किसी का कोई बस नहीं ।'

मैं शून्य में नजर जमाये उस महाभागा के बारे में सोच रहा था । उन्होंने जीप में मुझे बिठा दिया । बैठ गया । बड़बड़ा रहा था, 'नीला चली गयी । इस संसार को, मुझे, सबको छोड़कर ! वह जला दी गयी और मैं उसकी अन्तिम बात तक नहीं सुन सका । हाय रे दुर्भाग्य । एक सुनहला सपना कुछ करीब आया था, वह भी खंडित हो गया ! और इन सब का कारण—मैं ! नहीं, नहीं, मैं नहीं ; यह जोगलेकर । इसी आदमी के कारण यह सब हुआ । मैंने चिल्ला कर उसका गला पकड़ कर कहा, यह सब तेरे कारण हुआ है । दुष्ट !

उसने मेरा हाथ धीरे से हटा कर अलग कर दिया । कहने लगा, 'मुझे मालूम हो जाता राम, तो चाहे जितने खर्च होते, उसकी लाश को, तुम्हारे आये बिना जलाने न देता ।'

—रुपये, रुपये, केबल रुपये ! यही है, वह चीज—जो नीला को वैश्य कहलवा सकती है । इसी से उसे खरीदा और बेचा जा सकता है । इसी के लिए उसका खून किया जा सकता है । तुम भी रुपये की बात कहते हो ? रुपये, रुपये । ये लो रुपये...लो...कितने चाहिए !

आवेग में शायद ऐसी ही बहुत-सी बातें कह गया । जिसका कोई सिलसिला नहीं । तारतम्य नहीं । एकाएक मैं चीख पड़ा, 'ड्राइवर, रोको गाड़ी को । मैं कहता हूं, गाड़ी रोको । वर्ना मैं क्रुद जाऊंगा ।'

ड्राइवर अचानक के इस उपद्रव से घबड़ा गया । गाड़ी ब्रेक का धक्का खाकर एक ओर खड़ी हो गयी ।

मैं नीचे कूद पड़ा। जब मैं हाथ डाला। कुछ रुपये थे। मैंने जोगलेकर की ओर फैकते हुए कहा, 'यही वह चीज है, जो तुम सब के लिए बहुत बड़ी है।'।

भागता हुआ होटल पहुंचा। अपने कमरे की आलमारी खोल कर जितना भी कुछ था, समेट कर जोगलेकर के यहाँ लौटा। दरवाजा खुला था। माँ अन्नपूर्णा से वह बात कर रहा था। शायद मेरे ही बारे में। शायद मेरे पागलपन के बारे में।

मैंने रुपये उसके मुँह पर फैक दिये। चिल्लाया, 'यह है वह चीज, जिसने मुझमें नीला छीन ली। लो...लो...जितने चाहिए। लो! और चाहिए? और ला दूंगा। नीच बदमाश, कायर, दुष्ट.....!'

और भी बहुत कुछ कहता हुआ नीचे उतर आया।

सारी बम्बई मुझे काटने के लिए दौड़ने लगी। आज मैं भीड़ में नहीं वह सकता। उसे चीर कर, उसे क्षत-विक्षत कर आगे निकल सकता हूँ। इसलिए भागता ही गया; भागता ही गया।

बोरी-वन्दर स्टेशन आया तो रुक गया। कोई गाड़ी छूटने वाली थी। सांटी की आवाज बाहर सुनाई दे रही थी। भागते हुए मैंने लोकल-प्लेटफार्म को पार कर छूटती हुई गाड़ी पकड़ ली। गाड़ी की रफ्तार तेज हो गयी। स्टेशन पर खड़े लोग चिन्ता की दृष्टि से हैंडल पकड़ कर लटकते हुए मुझे देख रहे थे। पायदान पर पांव लग गये। दरवाजा खोल कर अन्दर चला गया।

कौनसी गाड़ी थी; कहां जा रही थी, यह नहीं जानता। टिकट नहीं था, दिशा नहीं थी, नीला नहीं थी, कहीं राम भी नहीं था।

एक बर्थ पर जाकर बैठ गया। जी किया कि डम्बे को दबा कर तोड़ डालूँ कि अपना सर फोड़ लूँ।

गाड़ी चली जा रही थी। पता नहीं किस प्रान्त, किस देश को?

—नीला के देश?

कल्पना का मधुर-सा झोंका आया, यदि वह साथ ही बैठी होती तो?

तो मुझे टिकट लेने के लिए कहती। इस समय खिड़की के पास बैठी, दौड़ते चले जा रहे दृश्यों के रूप का जिक्र करती। एक दिन कहती थी 'इसी आसमान के नीचे जो विपुल सौन्दर्य है, उसे हम दोनों साथ चल कर देखेंगे।'।
आह, मन की मन में ही रह गयी।

खिड़की से बाहर की ओर देखा । प्रतिपल नवीन दृश्य क्षणिक वेग से आते और विलीन हो जाते ।

खिड़की के पाम नीला नहीं है । ट्रेन में नहीं । बम्बई में नहीं । अगे, इस संसार में भी नहीं !

-नीला !

मैंने माथे पर हाथ रखकर पुकारा !

गाड़ी के पहियों की आवाज में मेरी पुकार खो गयी ।

किमी पुल के ऊपर से गाड़ी के गुजरने की गुरु-गम्भीर आवाज सुनाई दी । दरवाजा खोलकर नीचे की ओर देखा । अगम गहराई । कृद पड़, तो इस संसार से चला जाऊँ । ठीक वहीं, जहाँ यह गाड़ी नहीं ले जा सकती, और जहाँ नीला है !

मृत्यु के एक दिन पूर्व उसने कहा था, 'राम मरने की बात मत सोचना । मेरे गिर पर हाथ रख कर कसम खा कर कह, ऐसी कोई हरकत नहीं करेगा ।'

मैंने स्वीकार किया था ।

लेकिन कहा था, तुम्हें मेरे पास रहना होगा । उसने अपने वचन का पालन नहीं किया । नहीं कर सकी । छोड़ गयी इस राम को रीता ही रखकर । दिव्य-प्रेरणा का रूप लेकर वह आयी, और बिना किसी तरह की सूचना दिये अदृश्य हो गयी ।

-कितनी विशाल थी वह ! कितनी विराट !

-उस विराट में अपने को खोज सकता था । उस विशाल में मैं भी था !

-नीला ! ओ नीला !!

-कहाँ हो तुम ?

-इस वेदना-विलाप की कोई प्रतिध्वनि नहीं ?

राम सीता को खोकर इतने दुखी हुए होंगे, नहीं कह सकता । राम की पीड़ा का मर्म मुझ से अभी तक अलूता है । एक-एक दृश्य में नीला की सजीवता सभ्रम उपस्थित हो जाती । लेकिन कहीं कोई नहीं ? राम भ्रम को पहचानते थे । कुंज-लताओं से, हरिण-शावकों से उन्होंने सीता का पता पूछा था, उसमें सीता को देख नहीं पाये । लेकिन मैं ? मुझे तो हर जगह नीला ही दिखाई दे रही है । अभिशाप्त, दुखी, अपमानित, पीड़ित !

कहने वाले कहें, कि मैं राम होता तो वह सीता नहीं थी। सो मुझे ऐसा दुख है भी नहीं कि कोई उसे कहां ले गया। मुझे तो रोना इस बात का है कि उसे नष्ट कर दिया गया। तोड़ दिया गया। जहां कहीं वह रहती, सिर्फ इतना ही मुझे मालूम होता कि वह मौजूद है, सुखी है, ठीक है; तो मैं किसी के सामने वेदना दिलाप करने नहीं जाता। किसी में युद्ध नहीं ठानता !

लेकिन हाय, वह चली गयी !

गाड़ी रुकी। दरवाजा खोल कर किसी ने अन्दर प्रवेश किया। नीला के आगमन का भ्रम-सा हुआ। उठ बैठा। आगत व्यक्ति का हाथ अनजाने में ही पकड़ कर मैंने पुकारा, नीला.....!

-यह क्या है ?

-नीला ?

आंखें खोल कर, भ्रम के धुंध को साफ कर देखा, नीला नहीं, टिकट-चेकर था।

पूछा, टिकट ?

-कौनसा टिकट ? कैसा टिकट ? कहां का टिकट ?

-विदाऊट-टिकट सफर करने की यह नयी फैशन देखी। फर्स्ट-क्लास ! अच्छी बात है। पैसे निकालिये।

मैं उसकी ओर ताकता रहा। उसने हिसाब लगाकर बताया, 'मत्तर रुपये नौ आने !' पूछा, कहां जाओगे ?

स्थिति समझ गया। जेब में हाथ डाला। एक रुपया पास में रह गया था। उसकी ओर बढ़ा दिया।

वह हंसने लगा। मेरा विकृत मस्तिष्क भन्ना उठा। चिल्ला कर मैंने कहा, तुम्हें भी रुपये चाहिए। रुपये, रुपये। लो, यह लो।

मैंने दोनों जेबें उलट दीं। वहां कुछ भी नहीं था। लेकिन मैं विचलित नहीं हुआ। कहा, 'रुपये दूंगा। ओरे, मेरी कला बिकती है। उससे पैसे बरसते हैं ! कला अब जीवनोपयोगी है। 'आर्ट फोर लाइफ सेक' समझे ? 'आर्ट फोर आर्ट' का जमाना गया। मैं आर्टिस्ट हूं, आर्टिस्ट !! मेरी कला राजनीति के दांव-पेंचों को सीधा तिर्छा करती है। बड़े-बड़े आदमी डरते हैं मुझसे। उम्र दिन चीफ मिनिस्टर ने मेरे बारे में कहा था, 'यू आर टू बिटर।' देखा, कितना कड़वा लगता हूं उनको ? खूब कमाऊंगा। भरौसा रखो। खूब कमाऊंगा। कहोगे, उतने पैसे दूंगा !'

गाड़ी चल दी।

उसने मेरी किसी बात का जवाब नहीं दिया। चुपचाप सिगरेट सुलगा कर कम्पार्टमेंट की एक बर्थ पर जम कर बैठ गया।

धीरे-धीरे मेरी बकझक कुछ कम हुई। उठकर विनीत स्वर में कहा, इस समय मेरे पास पैसे नहीं हैं। भला और ईमानदार आदमी हूं। आर्टिस्ट हूं। जहाँ चला जाऊंगा, पैसे मिल जायेंगे। कमाऊंगा, तब जहर दूंगा। इस समय दुख मत दो। मुझे अकेले में छोड़ दो।

लेकिन वह गया नहीं। मैं झल्ला कर बोला, 'कह तो दिया कि पैसे दे दूंगा। विश्वास क्यों नहीं करते? विश्वास न करने में नुकसान है। करने में नहीं। देखो तो अविश्वास न करता, तो नीला को इस तरह खो देता? आज जब समझ रहा हूं, तो वह नहीं है। एक दिन तुम भी इस बात को समझ जाओगे। तब पछताओगे। मेरी तरह भटकने फिरोगे। लेकिन उस समय मैं नहीं होऊंगा।

वह मेरी ओर चुपचाप स्थिर दृष्टि से देखता रहा। मैंने थक कर कहा, अच्छी बात है, विश्वास मत करो। जो जी में आये करो।

मेरे पागलपन को देखकर वह इतना ही कर सका, कि बिना चार्ज किये ही अगली स्टेशन पर उतार दिया। बल्कि प्लेटफार्म से बाहर भी कर दिया कहा, गेट आऊट!

अनजानी स्टेशन। नाम याद नहीं आ रहा है। लेकिन ऐसा धुंधला-सा चित्र है कि स्टेशन के ठीक सामने ही तांगों का स्टैण्ड था, और बस भी वहीं खड़ी थी। स्टेशन से निकलने वाली भीड़ उनकी ओर बढ़ रही थी। तांगेवाले चिरौरी कर रहे थे। एक अंग्रेज परिवार ढेर सारा सामान लिये सीढ़ियों पर खड़ा था। दो चार कुली उनके इर्द-गिर्द जमा हो गये थे।

मैंने उनसे अंग्रेजी में कहा, सामान ले चलें?

परिवार का मुखिया मेरी ओर गौर से देखने लगा। कहा, चलो।

सामान उठाकर तांगों तक ले गया। कभी इतना वजन उठाया नहीं था। भूखा था, कमजोर भी। ईमानदारी का आप्रह्व था कि सामान सुरक्षित अवस्था में पहुंचा दूं। अपने तन की परवाह न करें। पसीना निकल आया। काम सफल रहा। उन्होंने दो रुपये मजदूरी दी। अन्य कुली हुज्जत करते रहे।

मैं अपना मेहनताना लेकर, विस्तीर्ण पथ की ओर देखता रहा, कि कहां आ गया हूं, और कहां जाऊं ?

भीड़ में लदी हुई बस खाना होने लगी, तो उसमें चढ़ गया। अपनी-अपनी मंजिल तय करने के लिए, असीम कष्ट सहकर, सटे हुए सारे यात्री किसी तरह समय काट रहे थे। सौभाग्यशाली कम थे, कि जिन्हें बैठने को जगह मिल गयी थी।

मेरे पास ही एक महिला खड़ी थी। ऊपर से नीचे तक दरिद्रता की मूर्तिमान प्रतीक। गोद में एक शिशु था। श्यामवर्ण, अस्वच्छ। बुरी तरह से रो रहा था। उस भीड़ में बिना हवा, मेरा भी दम घुटा जा रहा था, फिर उस शिशु के कष्ट की सहन-सीमा की कल्पना कर सकता था। देखा, बहुत से सहयात्री बालक की इस धृष्टता के लिए उसकी मां को कोस रहे थे। लेकिन शिशु अविराम गति में प्रलाप किये जा रहा था। दुबला-पतला भी इतना, कि कौनसी सांस अन्तिम होगी, यह कहना मुश्किल था। हिन्दुस्तान है ही ऐसा देश, कि काया में कुछ न होते हुए भी आदमी जिन्दा रहता है। जल्दी ही नहीं मर जाता। यह वरदान है या अभिशाप, इसकी मीमांसा अभी तक नहीं हो सकी है। अशांत मस्तिष्क को उसकी चींचीं अच्छी नहीं लगी। सोचा अच्छा ही तो है कि यह अपने बच्चे को लेकर नीचे उतर जाय।

उसकी मां निरन्तर कोशिश कर रही थी कि वह किसी तरह खामोश हो जाय। लेकिन सब व्यर्थ। वह रोता ही रहा। तभी देखा, पास की सीट पर बैठी हुई एक स्त्री ने कहा, 'लाओ, इसे मुझे दे दो।'।

शायद ही वह महिला उस स्त्री से परिचित हो। बालक को लेने का प्रलोभन हो, ऐसा आकर्षण भी नहीं था। उस बदतमीज शिशु ने हृद तो तब कर दी कि कृपा करने वाली उस साफ-सुथरी महिला की गोद में जाते ही छि-छि कर दिया। दुर्गन्ध से सारा वातावरण भर-सा गया। शर्म और दुख से उसकी मां रोने को हो आयी। लेकिन देखा, उस अज्ञात-माता को, जिसने शिशु को उठाकर, उसके नीचे अपना नया चद्दर रख दिया। गंदे चद्दर को यों का यों लपेट कर एक ओर कर लिया। जैसे कोई शिकायत नहीं। कोई दुख नहीं। कोई लज्जा नहीं।

दो तीन स्टोपेज के बाद वह अज्ञात-माता, [जिनका नाम मैं नहीं जान सकूंगा, इसलिए इसी नाम से इस प्रवास-काल में सम्बोधित कर लूंगा]

उतर गयीं। बच्चे को उसकी मां ने अपनी गोद में ले लिया। उसे बैठने को जगह मिल गयी। भाड़ कम हो गयी थी। बच्चा चुप हो रहा था।

मैंने टिकट 'डायरेक्ट' लिया था। लेकिन उस अज्ञातमाता के साथ ही उतर पड़ा। कुछ देर तक उनके पीछे-पीछे चलता रहा। कुछ दुविधा-सी महसूस हुई। लेकिन निकट जाकर प्रार्थना के स्वर में कह गया, 'मां मुझे एक मिनट का समय दोगी ?'

रुक गयीं। मेरी ओर देखकर पूछा, कहो ?

—बस, इसी तरह एक मिनट तक खड़ी रहिये। मैं आपका चित्र बनाना चाहता हूँ। तुम मां हो, और मां ऐसी ही होती है, यह याद रखना चाहता हूँ।

सहज वात्सल्य के स्वर में हंस कर पूछा, तुम चित्रकार हो ?

—हूँ।

—सड़क पर ऐसा तमाशा तो अच्छा नहीं लगेगा। वे चलती-चलती कहने लगी :—लेकिन यह तो बताओ इसका क्या करोगे ?

—सो तो नहीं जानता कि उसका क्या होगा ? लेकिन यह मेरा ज़रूरत है। यह जानता हूँ। आप को एतराज न हो तो.....!

—आओ मेरे साथ। चित्रकारों को तो चित्र बनाने में ही सुख मिलता है। बड़े सनकी होते हैं ये सब लोग। तुम भी वैसे ही लगते हो। आओ। चित्र बनाना, प्रसाद पाना और चले जाना।

पल-भर के लिए रुक कर पूछा, कहां रहते हो ?

—बम्बई से आ रहा हूँ। कहां आ गया हूँ, और कहां जाऊंगा—यह नहीं जानता। सच ही कहा आपने, सनकी ही हूँ। बम्बई में मन नहीं लगता, इसलिए वहां से चला आया। कहां मन लगेगा, यह नहीं मालूम।

उनका घर दूर नहीं था।

किसी मन्दिर की पुजारिणी थीं वे। मन्दिर के पास ही एक कमरा था, वही उनका निवास स्थान था। पहुंचने पर जूते खोलने को कहा गया। आज्ञानुसार हाथ धोये।

बैठने के लिए आसन बिछा दिया। कहा, मेरा चित्र तो बाद में बनाना, पहले मुझे एक राधा-गोविन्द का चित्र बना दो।

—उनको तो कभी देखा नहीं। बनाऊं कैसे ? बिना जाने, बिना देखे तो मैं कुछ भी नहीं बना सकता।

—ऐसा भी कहीं होता है कि जो देखा जाय, वही सब बना दिया जाय ? जो देखा जाय वही सब पूजा जाय ? देख तो रही हूं, इस बड़ी सारी दुनियां को । लेकिन पूजा तो राधा-गोविन्द की ही करती हूं । लेन-देन तो इस दुनियां से होता है । लेकिन सेवा और समर्पण तो यहीं होता है । कहो तो, जो कुछ देख लते हो, वह सब बना डालते हो ?

—नहीं मां । वह सब तो नहीं बना पाता । लेकिन जो नहीं देखा उसे बनाने का सामर्थ्य भी मुझमें नहीं है । क्या करूं ?

—यही तो कहती हूं कि जो नहीं देखा है, उसे ही देखने की चेष्टा करो । तुमने जयदेव का गीत-गोविन्द पढ़ा है ? पढ़े-लिखे मालूम होते हो, जरूर पढ़ा होगा । कहोगे, वह सब मन की रसिकता मात्र है । ऐसा है । लेकिन वह सब कृष्णार्पण हो गया । इसलिए वह एक व्यक्ति की रचना होकर भी, किसी मेरे हुए के खजाने की तरह दब कर खो नहीं गयी ।

—जो अदृष्ट है, उसे देखने लग जाऊं—ऐसा अध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हो, यह लोभ अभी तक नहीं हुआ मां । प्रवृत्ति भी नहीं होती । अपनी सीमाओं को जानता हूं । इन सीमाओं के अतिरिक्त केवल अध्यात्म ही मुझे नहीं दिखाई देता । मुझे ऐश्वर्य, कर्म और संकल्प सब कुछ दिखाई देता है । उनमें जानता हूं, न राधा है, न कृष्ण ! कविता को मूर्त रूप देकर सत्य प्रमाणित करने का छल मुझसे होता नहीं । इसलिए कि मैंने राधा को कृष्ण-विहीन देखा है । कृष्ण को राधा के लिये भटकते हुए । कितनी दरिद्रता, जितना दुख, कितना अरूप, कितनी वंचना इस दुनियां में है ! उसे 'नहीं है' कह कर तुम्हारे गोविन्द के गुण गाने लायक बुद्धि मेरे पास नहीं है मां । फिर एक बात और भी तो है; आज तक परम्परा से उनके प्रति जो भक्ति, जो आदर प्रदर्शित किया जा रहा है, जब वह मेरे मन में उस मात्रा में नहीं है, तो गोविन्द की जगह मैं अपने बना बैटूंगा । राधा की जगह मृणाल को । अथवा यशोदा नीला से अधिक सम्पन्न नहीं हो सकेगी । तब तुम लोग 'गलत है, गलत है' कहने लगोगे । इसलिए मुझे कागज पेंसिल दे दो । तुम ही जगद्जननि हो, तुम्हें ही इस रूप में देख लिया, तो समझ लेना कि परम ज्ञान मार्ग में दीक्षित हो गया ।

—हरे कृष्ण । हरे कृष्ण । तुम क्या कह रहे हो बेटा, कि राधा गोविन्द यहां नहीं हैं ? ऐसा होता, तो यह दरिद्रता, यह अरूप-माया, यह भ्रम, इन

सबसे दुनियां निराश न हो जाती ! लेकिन आज भी वह जिन्दा है, सो इसलिए कि उसे यह सब एक दिन पाना है । लोग रास्ता नहीं जानते, तभी तो भटक रहे हैं ।

मैंने दीर्घ श्वास लेकर कहा:—होगा मां । ऐसा ही होगा । अपने बारे में अब कुछ नहीं कहूंगा । तुम चाहती हो, वह बना दूंगा । तुम मुर्खा हो मर्कां तो मैं अपने अज्ञान पर भी संतुष्ट हो लूंगा ।

भोजन मिला । कागज-पेंसिल भी मिल गये ।

मैं राधा-गोविन्द का चित्र बनाने बैठा ।

कल्पना करने लगा, कैसे थे गोविन्द, कैसी थी राधा ?

पूछा, मां कैसी थी यशोदा, कैसा था कृष्ण ? उनका जन्म जान लूं, तो उनके प्रेम को समझने की चेष्टा करूंगा ।

वे सूरदास का एक भजन गाने लगीं । शिशु-कृष्ण मां-यशोदा में जिद्द करते हैं । रुठ जाते हैं । शैतानी करते हैं कि सजा पा जाते हैं ।

मुझे लगा कि कृष्ण-यशोदा को देखे बिना, कृष्ण-राधा को देखना सहज नहीं ।

इसलिए यशोदा कृष्ण को संजोने बैठा ।

लगभग आठ घंटे बैठा रहा । अचल समाधि इसे ही कहते होंगे । मन्दिर में पूजा करने का जिनका व्रत था वे वहां चली गयीं । मैं अपने कागज पेंसिल पर नजर टिकाये झुका बैठा रहा ।

पता नहीं कब नींद आ गयी ।

उठा, तो देखा सुबह होने आयी है । अज्ञात-माता मन्दिर में अर्चना का तैयारी कर रहीं थीं । मैं भजनों के स्वर पहचानता हुआ उनके पाम पहुंचा । कहा, यशोदा-कृष्ण वहां बैठे हैं । देखो तो वही हैं क्या, जो तुम उस दिन बता रहीं थीं ।

वे मेरे साथ आयीं । शीट खोल कर मैंने पसार दी । बाहर प्रकाश में लाकर उसे देखा । आनन्दाश्रु बहने लगे । कहने लगीं, 'अरे कलाकार, तुझे तत्वबोध हो गया । यही यशोदा है, यही कृष्ण ! आ, आ । यही हैं वे । यह भगवान का प्रसाद है, तेरी प्रतिभा सफल हो गयी रे ।'

मुझे हंसी आ गयी। कहा, मां यह तो तुम्हारा चित्रकार है। पास में जा है, वह यशोदा नहीं, नीला है।

उन्होंने जैसे सुना ही नहीं, यहाँ कहती रहीं, तू ने कृष्ण-यशोदा को देख लिया। जयदेव के गीतगोविन्द को पूरा करने के लिए साक्षात् भगवान् श्री कृष्ण को आना पड़ा था। यहाँ भी उनकी ही चरण-रज पड़ी होगी।

उस वृद्धा का विश्वास देखता रहा। उनकी प्रसन्नता देखकर पिछले दिनों का अवसाद कुछ मध्यम हो गया। फिर आग्रह हुआ, राधा-गोविन्द मां बना दे।

मैंने कहा, यह नहीं होगा मुझसे मां ! यह नहीं होगा।

डर-सा गया कि राधा कहीं मृणाल के रूप में प्रस्तुत न हो जाय। यह बुरा होगा। इसलिए टाल देना चाहा। लेकिन वे नहीं मानीं। सो दूसरे दिन उनका ही स्कैच बना कर, बिना किसी प्रकार की सूचना दिये मन्दिर छोड़ कर चला आया।

रास्ते भर यही सोचता रहा—नीला को नहीं भुलाया जा सकता। फिर भी लगा, कि जैसे नीला की कमी नहीं है। खोजने की आँखें होनी चाहिए। तभी तो उस वृद्धा को नीला ही यशोदा लगने लगी थी। इस मृत-लोक के एक तुच्छ प्राणी को उसने सहज ही कृष्ण मान लिया था।

उस दिन कृष्ण कहने लगा था अपने सखा अर्जुन से, कि सब जगह मैं ही तो हूँ। लेकिन मित्र और घनिष्ठ सखा होने पर भी वह इस महान् तथ्य को नहीं जान सका था; और कृष्ण की मृत्यु पर चकित-भ्रमित होकर हतप्रभ-सा हो गया था, कि जिस गाँडिव की कीर्ति से शत्रु कांप जाया करते थे, वह शिथिल हो गया और कृष्ण की पत्नियों को चोर-डाकू उठा ले गये !

मेरा तत्वबोध तो इतना प्रबल नहीं, फिर भी नीला के अभाव को सहने के लिए एकाएक जो यह नूतन भूमिका प्राप्त हो गयी थी, उसके लिए इस अज्ञात-माता का कृतज्ञ ही रहूँगा !

मैंने दोनों हाथ आसमान की ओर उठाकर कहा, तुम्हारी शरण में हूँ !

लगा कि नीला ने मेरी आवाज सुन ली है !

संकल्प लिया कि अपनी नीला के शत-शत रूपों की खोज में ही अब यह जीवन बीतेगा। यही अपनी खोज होगी। यही प्रकाश की, जीवन की, और भगवान् की खोज है !

- यही यात्रा, यही उद्देश्य ।
- यही पंथ, यही पाथेय ।
- यही प्रेरणा, यही कृतित्व !
- यही अभाव, यही पूर्ति !

चौदह :

जय की कामना, पराजय के अन्धकार में चमकती अधिक है । लेकिन जुगनू के प्रकाश की तरह कुछ देर के लिए चमक कर अदृश्य भी हो जाती है ।

जिस शुद्ध-संकल्प को लेने में परम आत्म-तृप्ति मिली थी, उसको सम्पूर्ण करने के लिए अवलम्बित मार्ग में ही कोई गड़बड़ रह गयी थी तभी तो आज यह प्रायश्चित्त करना पड़ रहा है ।

पूछता-पूछता स्टेशन आया । मास्टर से मिला । कोई मद्रासी सज्जन थे । अपना परिचय देते हुए 'कार्टूनिस्ट हूँ' इसका जिक्र विशेष रूप से कर दिया । मिल कर खुशी हुई, ऐसा उन्होंने कहा ।

बताया, किन्हीं खास परिस्थितियों के कारण यहां तक चला आया ! वापस बम्बई जाना चाहता हूँ । वहां के एक पत्र में मेरे कार्टूनों का हिसाब बाकी है । तार देकर रुपये मंगाना चाहता हूँ । करीब डेढ़ रुपया मेरे पास है, इससे ज्यादा लगे, तो आप एक बार दे दें । मनी-ऑर्डर आते ही लौटा दूंगा ।

उन्होंने मदद करना सहज ही स्वीकार कर लिया । तार दे दिया गया । कहने लगे:—किसी बात की फिक्र न करूँ, बल्कि पैसे न भी आयें, तो बम्बई तक पहुंचाने के लिए गार्ड को कह दूँगे । वे उनके दोस्त हैं, यह भी मालूम हुआ ।

यह भी ठीक ही था । बम्बई पहुंचने के लिए एकाएक इतना व्यग्र हो उठा, कि महसूस होने लगा—बिना वहां पहुंचे बहुत कुछ अवांछनीय हो

जायगा। ऐसा क्या होगा, यह उस समय भी स्पष्ट नहीं था। आज भी सोच नहीं पाता हूँ, कि जीवन के प्रस्तुत अध्याय को ऐसा मोड़ नहीं मिलता, तो क्या बुरा होता ?

घण्टे भर तक प्रत्युत्तर का इन्तेजार करता रहा। रुपये भेजे थे। लिखा था, 'इन सौ रुपयों के अतिरिक्त जरूरत हो तो लिखिये। तुरन्त आ जाइये।'।

उस पत्र का नाम यहाँ नहीं लिखूंगा। लेकिन उन सम्पादक महोदय की बात के साथ-साथ, स्टेशन-मास्टर, अंग्रेज, अजात-माता, टी. टी., सबके विषय में सोच गया। क्यों ये सब मेरे प्रति इतने मेहरबान, इतने कृपालु है! सम्भवतः इसलिए कि इनसे जो कुछ मांगा गया, उसे देने में वे सब समर्थ थे। सम्भवतः इसलिए कि विभिन्न रूपों में हर जगह नीला उपस्थित है। सर्वत्र कृपा, स्नेह, सौन्दर्य और विश्वास मौजूद है! कहूँ, यहीं मन के विभिन्न रूप हैं, यही नीला के विभिन्न रंग हैं—कि जब चाहूँ, आँखें खोल कर देख लूँ !

यह भ्रम है, या तत्त्वबोध ?

स्टेशन-मास्टर महोदय की नजरों में, एक तार मात्र देने से मनी-आर्डर के आ जाने पर मेरा मूल्य बढ़ गया। मैंने उनका एक स्केच तैयार किया। उस अमूल्य चीज को देना नहीं चाहता था, लेकिन वे प्रमत्त हुए, यह देखकर उन्हें दे आया।

गद्गद् होकर कहने लगे, बड़े भाग्य, कि आप जैसे लोगों में परिचय हुआ। बम्बई आऊँ, तो याद रखियेगा।

—आयें।' न्योता दिया।

वे सी-ऑफ़ करने के लिए आये।

लगा कि वही प्यार है, जो नीला की आँखों से सहज रूप में ही प्रथम और अन्तिम बार बरसा था। वही है ! तृष्णा से हाथ पसार दिये। वस्तुस्थिति को जानकर कम्पार्टमेन्ट में मुंह कर लिया।

एकान्त चाहता था। मैकेण्ड-क्लास का कम्पार्टमेन्ट, अकेला मैं !

कांच में मुंह देखा। लगा कि अभाव की उत्तेजित वेदना के चिह्न चेहरे पर अब नहीं है। कुछ दर्प, कुछ गौरव—सा महसूस हुआ !

पिछले आठ महीनों पर दृष्टि दौड़ गयी। कितना कुछ हो गया ! पूर्व-चित्र की ध्रुवला समाप्त हुई; तो सुलगता प्रश्न उपस्थित हो गया, अब क्या कहूँ ! बिना नीला के : बम्बई में..... ! कैसे यह सब संभव हो जायगा ?

धीरज बंधाया मन को, कि ओर, नीला को खोज निकालेंगा ! हम जो पुनर्जन्म की बातें करते हैं, वह नितान्त मिथ्या थोड़े ही होंगी ! यह भी तो आशावाद है, कि आदमी मरता नहीं, जीता है। जिन्दगी मौत से बड़ा है। कि हर आदमी नाना रूपों में उपस्थित है !

कि इन में ही कहीं नीला भी मौजूद है।

वापस होटल में आया। लगा कि बहुत कुछ टूट-फूट गया हूँ। अपने उस खंडित रूप को देखा कि जो रक्तकीट की तरह मर कर भी जिन्दा है। समय तो लगेगा ही—और समय के बीच अन्तराल भी होगा। वह चाहे जितना असह्य हो, चाहे जितना दुःख अथवा कठोर, भोगे बिना रह नहीं।

दैनिक कर्म से निवृत्त होकर उसी अखबार के दफ्तर में पहुँचा। ऐसे नाजुक समय पर रुपये भेजने के लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद दिया। भेरे इस तरह एकाएक गायब हो जाने के प्रति उन्होंने बड़ा आश्चर्य व्यक्त किया। खासकर इसलिए कि वे अपने पत्रों के प्रुप में मुझे स्थायी रूप से रखना चाहते हैं। इस बारे में निर्णय भी हो चुका है। तनख्वाह फिलहाल माँदे चार सौ रुपये तय हुई है। लेकिन विचलित न होऊँ, इसलिए कहा, दो चार महीनों में और भी बढ़ा दी जायगी।

रकम कम नहीं थी। फिर उनकी सज्जनता का अनुग्रह भी था। मैंने स्वीकार कर लिया।

सोचा कि प्रवाह में कुछ दिन बह लूँ, तो किसी हद तक दुख से मुक्त हो जाऊँगा। तब निस्पृह-भाव से संसार के लोगों को देख सकूँगा। इस समय पूर्व-निर्णीत यात्रा के योग्य नहीं हुआ हूँ। क्योंकि किसी भी स्वरूप के प्रस्तुत होते ही पाने की इच्छा होगी; और नीला अब पाने की चीज नहीं। मेरे भाग्य का इतना बड़ा वरदान नहीं। वह सिर्फ दर्शनीय है। ऐसी तटस्थता के लिए समय का अन्तराल चाहिए। अच्छा ही है कि सहज ही यह अन्तराल मिल गया।

रोज सुबह निश्चित समय पर ऑफिस जाने लगा। सम्पादक-महोदय का व्यक्तिगत प्रेम भी कम नहीं था। वे कुछ खास खबरों की कटिंगें भेज देते। उनको आधार बनाकर सन्ध्या तक नित्य एक कार्टून उन्हें दे आता।

वहाँ जितने दिन काम किया, उसे संक्षेप में कहूँ, तो यही—कि यश मिला। ख्याति मिली। बड़े कहे जाने वाले लोगों से सम्पर्क हुआ। आलोचक

और प्रशंसक मिले। पैसा भी मिला। खुद सन्तुष्ट इसलिए था कि लाचार, पंगु की तरह नहीं जी रहा हूँ। बल्कि जीने की कामना के साथ जी रहा हूँ।

आफिस में एक अलग चेम्बर [कमरा] मिल गया था। साफ-सुथरा। छोटा-सा। आवश्यक पुस्तकों, फोटोग्राफ्स और रिफ्रेंस-बुक्स [संदर्भ ग्रंथों] की व्यवस्था के साथ। जिन्दगी का एक ठर्रा बन गया, कि सुबह उठता हूँ, आफिस जाता हूँ, काम करता हूँ, और लौट आता हूँ। यही क्रम निश्चित हो गया। इसी में इतना समरस हो गया कि याद ही नहीं रहा कि इससे अधिक भी कुछ था, या हूँ!

जिय पत्र में नोकरी कर रहा था। वह था—कांग्रेस का आन्तरिक हिमायती। सुना है, कांग्रेस के एक लोह-पुरुष का संरक्षण उसकी रीढ़ थी। पत्र मोक्षिय था। अपने आप में अच्छा और गठा हुआ। आजादी के बाद कांग्रेस की जितनी निन्दा हुई है, वह कभी-कभी तो औचित्य की सीमा भी पार कर गयी है। कुछ हलके दर्जे के कांग्रेसी लोगों की निन्दा इस संगठन की लांछना का कारण बन गयी। जब कि एकान्त रूप से इसी पैमाने को सही नहीं कहा जा सकता। यहाँ तक कि कुछ ही दिनों के बाद ऐसा लगने लगा कि कांग्रेस ही बदनामी का प्रतीक है! इसे मैं ठीक नहीं समझ पाया था। यहाँ 'ठीक' के सम्बन्ध में तुलनात्मक आधार ले रहा हूँ। कांग्रेस का हिमायती! वह पत्र था: मैं नहीं। लेकिन मैं विरोधी था, यह भी सच नहीं। कह यह रहा हूँ कि आजादी के एक मेरुदंड लोहपुरुष का यह विचार मुझे सही ही लगा कि बम्बई जैसे शहर से गुजराती, मराठी और अंग्रेजी के मजबूत अखबार निकलने चाहिए, जो विरोधियों की चुनौतियों का माकूल जवाब दे सकें।

सस्ते होने के कारण पत्र चले भी खूब। बाद में अंग्रेजी, मराठी और गुजराती के संस्करण साथ ही निकलने लगे। तीनों संस्करणों में मेरे कार्टून छपते। मेरे बिना कहे तनखाह में ढाई-सौ रुपयों की वृद्धि हुई।

बाद में मालूम हुआ कि लोह-पुरुष को भी मेरे कार्टून बहुत पसन्द आये। उनके सेक्रेटरी ने एक बार बम्बई का पत्र भी लिखा। भारत-सरकार के एक महत्वपूर्ण विभाग से वे सम्बन्धित थे। लोगों का लोह-पुरुष कहना सोलहों आने सही था। भारतीय संगठन के अपने जमाने के वे एक प्रतीक थे।

प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सारे भारत की कार्यवाहियों पर वे कड़ी नजर रखते। जो गलत है, उसे उन्होंने कभी नहीं सहा। इसलिए काम करने वालों को सजग प्रेरणा मिलती। लगता, कि हम सब उस एक व्यक्ति के कुशल-कर्म के सहयोगी है, मानों उनका गौरव हमसे सम्बन्धित हो गया हो।

जो हो, प्रसिद्धी और प्रसाद दोनों मिले। कला की सार्थकता भी इससे अधिक क्या हो सकती है, कि प्रचार के इस युग में प्रत्येक कार्टून राजनीति के बड़े-बड़े नेताओं की तीखी आलोचना मान्य करवाने में सहायक हो जाय। खासकर जब कार्टूनों द्वारा व्यंग्य में कांग्रेस के महात्माओं का ही मजाक उड़ा दिया करता, तो मेरे प्रमुख सम्पादक महोदय बड़े खुश होते। किस पर क्या असर पड़ा, इसका विषय वर्णन करते। उसी सिलसिले में एक बार उन्होंने कहा था कि तुम्हारे पहले कार्टून को देखकर यहाँ के चीफ-मिनिस्टर कहने लगे थे कि 'इट इज बिटर एण्ड टू स्ट्रोंग।'।

आफिस में किसी से मेरी अधिक मेल-मुलाकात नहीं हो सकी। हास्य व्यंग्य को प्रतिदिन पेश करने वाले कार्टूनिस्ट को इतना नीरस नहीं होना चाहिए। लेकिन क्या करता, जो कुछ था, उससे अधिक हो भी नहीं सका।

एक दिन अपने चेम्बर में बैठा काम कर रहा था। तभी रिसेप्सनिष्ट के चपरासी ने एक चिट ला दी। कोई मिलने आया था। नाम पढ़ा, लिखा हुआ था--मृणाल।

कहा, यहीं भेज दो।

ब्रुश पानी में डाल दी। स्याही की शीशी पर ढक्कन लगा दिया। बोर्ड एक ओर सरका दिया। घंटी बजा कर चपरासी से एक और कुर्सी लाने के लिए कहा।

तभी मृणाल ने दरवाजा खोल कर प्रवेश किया। बोली नहीं। सिर्फ हाथ जोड़ दिये।

मैं स्तब्ध, चकित, भ्रमित-सा उसकी ओर देखता रह गया। इतना ही कह सका, मृणाल।

नीला का अभाव एकाएक अधिक गहराई से दुख देने लगा। बैठने के लिए भी नहीं कह सका। प्रकम्पित स्वर में कहा, मृणाल नीला चली गयी।

-मां अन्नपूर्णा कह रही थीं।

-तुम उन्हें जानती हो ?

-वे मुझे जानती हैं । शायद नीला ने उन्हें बताया हो !

वह कुर्सी पर आकर चुपचाप बैठ गयी ।

मैंने कहा 'मृणाल, अपने को जीतने में लगा हुआ हूँ । मन के मोह को जीतने में, अज्ञान को जीतने में । कभी-कभी लगता है, कि स्वयं को जीतने के लिए जो परा-शक्ति, अमानवीय शक्ति चाहिए, वह घोर एकांगी है, और मेरे पास नहीं है ।'

चपरामा ने आकर पूछा, 'लंच ले आऊँ ?'

हमेशा अपने कमरे में ही लंच लेता हूँ । मृणाल की उपस्थिति में लंगा या नहीं, इसीलिए उसने पूछा था । मैंने मृणाल की ओर देख कर कहा, 'ले आओ । ये भी खायेंगी ।'

मृणाल संकोच करने लगी । 'नहीं-नहीं' कहती रही । मैंने कहा, आज तो साथ खाना ही होगा । कितने दिन इस तरह मे अकेला बना रहूँ, बताओ तो ?

सोना कैसी है, मां कैसी है, अन्नपूर्णा क्या कहती है, उन्हें कितना दुख है, जोगलेकर महोदय भी पछता रहे हैं—यही सब वह कहती रही ।

समय कैसे गुजर गया, होश ही नहीं रहा ।

सम्पादक-महोदय का फोन आया, 'कार्टून तैयार हो गया ?'

कहा, मन नहीं लगता । माफ़ करें । अभी तक नहीं बना सका हूँ ।

-अच्छा । अच्छा । कोई बात नहीं ।

टेलीफोन रख दिया ।

दस-एक मिनटों के बाद वे स्वयं सशरीर हाज़िर हो गये । मृणाल को मेरे पास बैठे देख, कुछ इस तरह से मुसकराये कि उनकी क्षमा स्पष्ट हो गयी । कहने लगे:-'आज एक 'शो' का प्रीमियर है । तुम्हें बड़े प्यार से बुलाया है । यह कार्ड है । राइम पर आ सको, तो आ जाना ।

मैंने पूछा, हम दोनों आ सकते हैं ?

-क्यों नहीं । जरूर । जरूर ।' कहते हुए हंसते-हंसते वे चले गये ।

मैंने अधिकार पूर्वक कहा, सिनेमा चलना होगा मृणाल !

-नहीं। घर कह कर नहीं आयी हूँ।

-सूचना दे दूँ, तो चलेगी ?

-आज नहीं। फिर कभी।

-बाद की बात छोड़ो मृणाल। कौन कहां और कैसा रहेगा यह कोई नहीं कह सकता। आज जो है वही सत्य है ! उमे ही भोग लेने दो।

उमने उत्तर नहीं दिया। मौन ; अर्थात् स्वीकृति सूचना।

फोन से उसने घर सूचना भिजवा दी। सोना थी। मैंने उसे नमस्कार करके कहा :--एक दिन आकर दर्शन दे दो। बहुत कुछ बदल गया हूँ। कैसा हूँ, यह तो आकर मुन लो !

बादा किया कि 'आऊँगी'। आग्रह हुआ, कि मैं ही एक दिन उनके यहां चला आऊँ। उसकी बात का जवाब दिये बिना ही मैंने दुहरा दिया, मृणाल देर में आये तो चिन्ता मत करना। उत्तर मिला :--ठीक।

हम दोनों सिनेमा-हाल में पहुंचे। प्रीमियर में बड़े कड़े जाने वाले लोगों की काफी संख्या थी। लेकिन मैं उन्हें सिनेमा से अधिक महत्वपूर्ण नहीं समझ रहा था। प्रधान सम्पादक महोदय के वहां उपस्थित रहने के कारण, लोगों से मिलने-जुलने का, अभिवादन अभ्यर्थना करने का ऐसा तांता लगा कि बारम्बार मृणाल का ख्याल आता और सोचता, यहां न आया होता तो ठीक रहता।

मेरे साथ होने के कारण कुछ महिलाएं मृणाल से भी मिलीं। वह संकोच में गड़ी जा रही थी। परिचय-विस्तार के प्रति लोगों का यह आग्रह मुझे भी बुरा लग रहा था। रिश्ते को स्पष्ट न कर पाने से कष्ट हो रहा था। डर-सा लगा, इस नवीन और अजीब स्थिति में वह क्षुब्ध न हो उठी हो।

आखिर शो शुरू हुआ। मैंने मृणाल का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा--मृणाल, नीला तो छोड़कर चली गयी। तुम मत छोड़ना।

अंधेरे में आभास हुआ कि नीला की साक्षी उसे अच्छी नहीं लगी।

मैंने कहा :--एक दिन परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से विवाह की ओर तुमने संकेत किया था। उस पर अब विचार करता हूँ, तो सोचता हूँ, तुम्हारे साथ बिना सम्बद्ध हुए मुझे मुक्ति मिल नहीं सकेगी। मेरे बारे में अब भी तुम्हारा वही मत हो तो आओ, हम विवाह करने का संकल्प लें।

विवाह के प्रथम प्रस्ताव और इस दूसरे प्रस्ताव, दोनों की भूमिका अत्यन्त सीक्षित थी। इसीलिए अपने प्रेम के इस रूप का जिक्र करते हुए लज्जित नहीं होता, कि वंचना अधिक गहरी नहीं थी।

मृणाल ने इतना ही कहा:—राम, आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

—मैं भी मृणाल।

—अगले माह ही हम ब्याह कर लेंगे। मां को बहुत संतोष होगा।' मृणाल ने भाव-विभोर होकर कहा।

—अगले माह नहीं मृणाल।' अनजाने में ही मेरा स्वर गम्भीर हो गया। कहा, 'नीला को गये अभी तो ६ माह भी पूरे नहीं हुए हैं। ब्याह के आनन्द पर उसके शोक को हावी नहीं होने देना चाहता। एक न एक दिन हम विवाह करेंगे—साथ ही रहेंगे—यही निर्णय क्या क्रम है मृणाल? इस निर्णय के आधार पर तो मैं बीस साल और गुजार सकता हूँ।

—बीस साल! लेकिन.....!

वह रुक गयी।

कहा—हां मृणाल एक अर्से के बाद भी यदि हमारा निर्णय अप्रभावित रहे, तभी स्थायी मिलन की सही पृष्ठभूमि तैयार हो सकेगी। इस समय तो मैं भटका हुआ हूँ। मेरी बीस वर्ष की यह उम्र भी कोई उम्र है भला? कुछ दिन तो हमें रुकना ही चाहिए। और...तुम भी तो अभी तक.....कल्पना करो मृणाल, यदि इन कुछ ही वर्षों में हम बच्चों के माता-पिता बन जायें... नहीं, नहीं; मृणाल यह सब नहीं। मां-बाप तो हमें बनना ही होगा, क्योंकि वह सात्विकता और परम-निर्माण है। लेकिन यह सब इतनी जल्द नहीं। अभी नहीं। जन्म-जन्मान्तरों का पुण्य सम्मिलित होता है, तब कहीं जाकर संयोग प्रबल हो पाता है। देखो तो, उतावल में नीला को प्राप्त करना चाहता था, तो उसे ही यहां से चले जाना पड़ा।'

मृणाल सुनती रही। कहने लगी:—मैंने तुमसे अधिकारपूर्वक आज तक कुछ नहीं मांगा, राम। कभी मागूंगी भी नहीं। लेकिन सहज रूप से यदि कुछ मिल जाय तो वह मेरे लिये अप्रलोभनीय नहीं। जीवन में भटकाव को मैं गलत मानती हूँ। इसलिए सस्पेंस (द्विविधा) मुझे पसन्द नहीं। अपनी इस शर्त के पीछे मोहक से मोहक स्वप्न को भी मैं त्याग सकती हूँ। तुम्हें पान्ना

ऐसे मोहक सपने-सा ही तो है। तुम जो कुछ कह रहे हो, वह शायद ठीक हो। लेकिन जो मुझे सोचना है, जिसे मैं अपने दृष्टिकोण से देख-समझ रही हूँ, वह भी गलत नहीं। तुम जिस विश्वास की बात कह रहे हो, वह कैसे हो—जिसकी बुनियाद ही अविश्वास पर खड़ी है!

सुनता रहा। किर्कटव्यविमूढ़-सा बैठा रहा।

जो कहना चाहता था, उसकी प्रतिध्वनि नहीं सुनायी दी। तर्क गलत नहीं था। लेकिन मेरी मांग विवाद नहीं। कुछ और ही थी। सच कहूँ, तो मुझे की बात यह है, कि पुरुष चाहता है कि स्त्री हर मायने में उसका अनुगमन करे। इस चाह को गलत भले कह दिया जाय, चाहे निन्दा की जाय। लेकिन इस चाह को पहचान कर स्त्री समर्पण करे, तो वह खुद को सुखी रख सकती है, पुरुष को भी। पर जिन्हें सत्य-दर्शन की लालसा है, उनका ध्येय सुख नहीं। सत्य वे पा जाते हैं, और इसके लिए पर्याप्त कष्ट भी सहते हैं। मैं तो इस समय सत्य की फिक्र में नहीं था। सुख की, मात्स्थि की चिन्ता में था।

धीरे-से कहा:-मृणाल, तुम मुझसे अधिक सबल हो। अपने पर तुम्हें अधिक विश्वास है! सुरक्षा की सीमा भी तुम्हारी स्पष्ट है। तभी तो हर बाधा-व्यवधान को पहचान कर तुम उसे दूर से ही नमस्कार करने में समर्थ हो। मैं उस स्थिति में नहीं हूँ। इसलिए तुम्हारे सामने पेरेलल [सामानान्तर] खड़े होने का दावा भी नहीं करता। जिस ससपेंस से तुम दूरदृष्टा होकर विदा ले लेती हो, मुझे उसका आभास भी नहीं हो पाता। और तब एक दिन अघटित घट जाता है। उसका जो भी असर होता है, अथवा हो सकता है; उसे सहने के अतिरिक्त मैं कुछ कर ही नहीं पाता! आज सोच रहा था कि तुमसे मिल कर बहुत सुखी हुआ हूँ! लेकिन लगता है, अनजाने में ही छिपे हुए नासूर को धक्का लग गया है। सो क्षुब्ध-सा हो उठा हूँ। खुद के सामने अधिक जटिल हो गया हूँ। समझ नहीं पा रहा हूँ। आशा करता था कि हमेशा इतना दुखी, इतना कातर, इतना लाचार नहीं रहूँगा। लेकिन देखता हूँ, कि जहाँ था, वहीं हूँ। जौ-भर भी आगे नहीं बढ़ सका हूँ। प्रेम की स्थिरता पर विश्वास था। अविश्वास करके पछता रहा हूँ। इसीलिए तुम्हारा आधार चाह रहा था। पता नहीं क्यों, तुमसे उम्मीद करता था कि तुम कहोगी, 'राम जो तुम कहते

हो, वह ठीक है। वही ठीक है'। लेकिन यह सब अपने मन का प्रेम था कि तुम्हारी तस्वीर उसमें समा नहीं पाती।'

उसने कहा:—अपनी कम उम्र बता कर जो छल तुम अपने साथ कर रहे हो, उसकी वकालत किसी स्त्री के सामने शोभा नहीं देती।

मे चुप हो गया !

शो खत्म हुआ।

टैक्सा में बैठ कर मृणाल को पहुंचाने उसके घर तक गया।

सोच रहा था, बहुत लम्बा हाथ पसारा। जहाँ प्रायः अति तुच्छ है, सारी तपस्या उसके लिए थी—यह जान कर मन को चोट-सी लगी। एक दिन ऋषि रन्तिदेव ने भगवान् मे सारी श्रृष्टि का कष्ट पाने का वरदान मांगा था। यह बहुत बड़ी चीज है—ऐसा भगवान् ने कहा होगा। इसके लिए प्रस्तुत तपस्या पर्याप्त नहीं। हजारों युगों से इसीलिए वह रन्तिदेव आज भी तप रहा है। जाने कब उसे वरदान मिल जाय। लेकिन जिन दिन उन्हें यह सिद्धि प्राप्त हो गयी, उस दिन श्रृष्टि के शेष व्यक्ति अप्रभावित नहीं रहेंगे ! मैं भी वही सब प्राप्त करना चाहता था। साधारण समाज की सारी अव्यवस्था अपने घर ओढ़ लेना चाहता था ! योग्य नहीं था। इसीलिए सिद्धि दूर खिसक गयी। अच्छा ही हुआ।

आकर चाय पी जाऊँ—घर पहुंचने पर उसने आग्रह किया। सोना को देखना चाहता था, इसलिए चला गया। हम दोनों मौन, एक दूसरे के प्रति अत्यधिक “ शिष्ट ”। व्यावहारिक। सोना देखती रही कि ये भिन्न दिशाओं के कैसे ग्रह है कि जरा से असें के मिलन के लिए जिन्दगी भर विग्रह और तूफान लिये फिरते हैं। मिलन भी संतोषदायक नहीं। अत्यन्त संक्षिप्त। कहा जाय, विद्रोह का प्रेरक।

यही मैंने उसकी आंखों में देखा।

मृणाल के प्रति मुझे कोई शिकायत नहीं।

वह जहाँ है, ठीक है। आलोच्य कुछ भी नहीं।

लेकिन वह मेरे लिए नहीं है।

और मैं किसी के लिए नहीं हूँ।

अकेला !

एकान्त !

एकाएक निर्णय ले लेना घटना का देम तां हो सकता है, लेकिन मेरी आदत ऐसी नहीं। दूर की सोचता चाहता हूँ, लेकिन दूरी के बारे में निर्णय करने की ताकत का मुझ में अभाव ही है। फिर भी, किन्हीं क्षणों में कुछ निर्णय इस गरीब से ऐसे हो गये हैं कि उन पर मन-प्राण से उठा रहा हूँ—ऐसी स्मृति है।

एकाएक मृणाल को प्राप्त करने के आश्वासन के लिए मैं इतना अधिक अधीर हो उठा, कि विश्वास का पाया हिलते ही अररधम-सा अस्थिर, अव्यवस्थित हो गया। भविष्य की आशावादी रूपरेखा धुंधली हो गयी, कि नीला को नहीं पा सका, मृणाल भी नहीं मिलेगी, तो कौन है मेरे लिये ?

हम तो चिन्मय हैं : जागृत हैं। शांत, खामोश और जड़ बन जाऊँ—ऐसी कोशिश करता हूँ। लेकिन अपना एकान्त, अपना एकाकी-स्वरूप अधिक स्पष्ट हो उठता है।

मैंने कोशिश की, कि दफ्तर के लोगों के साथ अधिक हिलामल सकूँ। अपने काम के अलावा रिपोर्टों के कमरे में चला जाता। इधर-उधर का बातचीत में रस लेने की कोशिश करता। यहाँ सिगरेट पीने की आदत सीखी। मन का किसी फालतू के काम में लगाये रखने का यह अच्छा साधन है। लेकिन वहाँ देखा कि उन्हें भी मेरी जबरन नहीं। इसलिए कि पहले-पहल तो जिज्ञासावश मेरे बारे में बहुतों ने बहुत कुछ पूछा। लेकिन मैं कुछ भी बता सकूँ, ऐसा मेरे पास कुछ है—यह कभी लगा नहीं। इतिहास जो है, उसे व्यवस्थित रूप से बताऊँ, इसमें संकोच होता है। इसलिए मेरा एकान्त-चेम्बर ही मुझे प्रिय लगने लगा। जैसे मृत हो गया होऊँ, काम के प्रति केन्द्रित होकर नशेबाज की तरह सब कुछ भूलने की चेष्टा करने लगा।

कुछ ही दिनों के बाद देखा कि पत्र की नीति अधिक कट्टर होती जा रही है। मेरे कार्टून अस्वीकृत भी होने लगे। उनके ऊपर के शीर्षक

या नीचे के न्यूज-आइटम बदल दिये जाने लगे। पत्र की नीति स्थूल रूप में कार्टूनों से अधिक महत्वपूर्ण हो गयी। मैं लाचार-सा, सहे चला जा रहा था। ऊपर से नीचे तक के अधिकारी बदल दिये गये। मैं जहाँ था, वहीं रहा। लेकिन सोचा, एक दिन आकर कहा जाय, कि 'मि० राम, यह कुर्सी, यह चेम्बर अब आपके लिए नहीं हैं,' तो उस दिन चुपचाप चले जाने के बजाय क्या यह अच्छा नहीं है, कि अभी ही चला जाऊँ।

लेकिन नये सम्पादक महोदय के आग्रह और प्रेम से जाना कि नोकरी कच्ची नहीं। मेरा महत्व कार्टूनिस्ट की तरह वैसा ही है।

अपने काम में व्यस्त बना रहा।

मृणाल दिमाग से हट भी जाती। लेकिन नीला अस्पष्ट होकर अधिक करीब चली आती। सोचता, गलती यहीं हैं, कि तुरन्त हर किसी से प्रभावित हो जाता हूँ। तब यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि किसी अन्य की भी इच्छाएं, धारणाएं और कल्पनाएं हो सकती हैं। वह भी उतनी ही उत्सुक और कृतसंकल्प हो सकती है—उन्हें पूरा करने के लिये। मृणाल को जो कुछ कह गया हूँ, वह उसके लिए कहीं भुलावा साबित न हो, इसलिए एक दिन उसे पत्र लिखा। कहा, 'मृणाल, बहुत कुछ सोचा, सोचने में कष्ट हुआ, इसलिए कि संचित विश्वास का धरातल नहीं रह गया। इसी निश्कर्ष पर पहुंचा हूँ, कि तुम्हारी विवाह करने की योजना बिलकुल सही है। लेकिन वर-पक्ष की ओर मैं नहीं हूँ। इसलिए तुम्हारी स्वतंत्रता को तुम्हारे ही हाथों सौंप कर तुम्हें विवाहित देखना चाहता हूँ। इससे शायद मुझे सुख और शांति मिले। यदि तुम्हें ऐसा अवसर मिल रहा हो, मिल सकता हो, तो मेरा आग्रह है कि तुम उसे स्वीकार करना।

साथ ही एक पत्र सोना को लिखा, कि मिलना चाहता हूँ।

तभी एक दिन अचानक समाचार प्रकाशित हुआ कि लोह-पुरुष की मृत्यु हो गयी। मुझे उस दिन बड़ा दुख हुआ। भारतीय राजनीति के वे एक सिंह-पुरुष थे। उनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय था। कर्म उसके प्रमाण थे। इस मृत्यु का गहरा असर कांग्रेस पर पड़ा। हमारे पत्र भी अप्रभावित नहीं रहे। धीरे-धीरे मालूम हो गया कि मराठी अखबार पहले बन्द कर दिया जायगा। एक दिन यह भी घोषित हो गया कि मराठी के अतिरिक्त अंग्रेजी

और गुजराती प्रकाशन भी स्थगित कर दिये गये हैं ।

मुझे अपना हिसाब मिल गया। कुछ बैंक में जमा था। कुछ और मिल गया। काफी दिनों तक जीवन-निर्वाह के सम्बन्ध में चिन्ता करने की बात नहीं थी।

लेकिन नये सिरे से जीवन-निर्वाह के लिए कोशिश तो करनी ही होगी, ऐसा लगने लगा। एक ही उपाय था, कि किसी दूसरे अखबार के सामने, प्राप्त कीर्ति की दुहाई देकर नोकरी की मांग करूं। अन्य समाचार-पत्रों में जान-पहचान, आदर-स्वागत सब कुछ था। लेकिन बहुत जल्द मालूम हो गया कि उनके विरोधी पत्र का कार्टूनिस्ट उनके लिये उपयोगी नहीं हो सकता।

इस तथ्य की जानकारी के बाद मैंने भटकना बन्द कर दिया। मन पर अजीब और व्यर्थ-सा आघात लग गया। उसे भूलने के लिए कहीं बाहर चला जाना चाहता था।

राजनीतिक पीड़ितों के लिए यही एक औषधि है।

फिर अकेलापन, और अपनी होटल का एकान्त कमरा।

हाथ में जलती हुई सिगरेट, चारों ओर पसरा हुआ किताबों का ढेर।

सोना नहीं आयी। मृणाल ने भी कोई जवाब नहीं दिया।

उन दिनों की मानसिक अवस्था का जिक्र करना लक्ष नहीं है। कहूंगा इसलिए नहीं। इतना ही कहूंगा कि प्रमाद, आलस्य एवं निष्क्रियता के साथ वे दिन बह गये।

एक दिन अचानक ही मैट्रो-सिनेमा के गेट पर सोना मिल गयी।

अभिवादन के बाद हंस कर कहा:—ऐसे निकम्मे आदमी की सुध लेना सचमुच व्यर्थ ही तो है।

लज्जित-सी होकर कहने लगी, 'नहीं, ऐसी बात तो नहीं! सोचा कि अब सोना को याद करने की राम को जरूरत नहीं रही। सो खामख्वाह तकलीफ नहीं दी। तुम फोन करते, बुलाते; न आती तो शिकायत कर सकते थे।'।

—चिट्ठी तो लिखी ही थी।

—चिट्ठी ?

—हां। खत।

—मुझे तो नहीं मिली ।

—काफी अर्था हो गया । मृणाल को भी लिखा, तुम्हें भी । लेकिन दोनों में से किसी का भी उत्तर नहीं मिला ।

—ओह, तो समझी । मेरी चिट्ठी भी मृणाल के हाथ लग गयी होगी । उसने शायद मुझे देना ठीक न समझा हो, इसलिए नहीं पहुंच सकी । खैर । तुम्हारा सन्देश पहुंच गया समझो । कहो, हूं तो तुम्हारे पास ।

—अभी तो पिकचर जा रही हो ।

—जा नहीं रही हूं । टिकट लेने आया हूं । आज मां ने कहा है कि शाम के शो में चलना ही होगा । कहते हैं, अच्छा पिकचर है ।

—होगा ।

—तुम्हारे लिए भी टिकट ले लूं ?

—नहीं । मृणाल भी होगी । उसके साथ मुझे डर लगता है ।

—नुकसान हुआ, तो जिम्मेदार मैं हूं । साथ रहूंगी ।

हंसकर कहा, इस गरीब की जिम्मेदारी लेने वाला अब कोई नहीं रह गया, सोना !

शायद उसने समझा कि मेरा संकेत एकान्त रूप से नीला की ओर है । इसलिए वह खामोश ही रही ।

उसने टिकट ले लिये । साथ चलने लगीं । मेट्रो के पास से मेरा होटल का फासला अधिक से अधिक पांच मिनट का ही होगा । रास्ते चलते चलते मैंने कहा :—आजकल बेकार हूं, जानती हो ?

—अखबार बन्द हो गये हैं ! जानती हूं ।

—यह सब अजीब खेल—तमाशा दिखायी देता है, सोना । जैसे भगवान दूर बैठे मजाक कर रहा हो । सब कुछ बहुत स्वस्रुत होकर करीब आ जाता है, और जरा—मा चमक कर अदृश्य हो जाता है । हजार कोशिश करता हूं, कि जो प्राप्त हो गया है, उसी में निबाह कर लूं । लेकिन तुम्हारे भगवान को यह मंजूर नहीं । अब लगता है कि जैसे उस सिरजनहार के सामने हार गया हूं । मान गया हूं कि उसका पराक्रम बल-प्रदर्शन में ही है । उसके आगे हमारी सीमा अत्यन्त सीमित है ।

—अब क्या योजना है ?

—अब तो कोई योजना ही नहीं रह गयी। सोचता हूँ, भविष्य को नापताँल कर तय करने वालों में मैं नहीं हूँ। इसलिए अब ऐसा आग्रह भी छोड़ देना चाहिए।

—ऐसे निरुद्देश्य बने रहना तो शोभा नहीं देगा।

—शोभा तो बहुत कुछ देता है सोना। पर सब कुछ अपने बग का ही तो नहीं। पहले सोचना था, कला जीवन के लिए है। वह जीवन के काफी अहमियत रखनेवाले भाग, राजनीति के लिए उपयोगी हो। मनप्राण से एकाग्र होकर उसमें लगा था। लेकिन राजनीति की उथल-पुथल जिन कारणों से होती है, उन पर मेरा बस नहीं। जिनके हाथ में राजनीतिक चक्र चलाने की शक्ति है, वे कैसे हैं, यह तो नहीं जानता—लेकिन उन पर मेरा अधिकार नहीं है, यह बात साफ है। मैं तो इस चक्र का एक छोटा-सा पुर्जा मात्र था। जब तक काम में था, महत्व था। नहीं हूँ, तो कोई हानि नहीं होगी, यह उन्हें मालूम है।

कहने लगी:—एक अखबार के खतम हो जाने से राजनीति का क्षेत्र खतम नहीं हो जाता। फिर जिसकी ताकत सब जानते हैं, उसे प्रमाणित करने के लिए सर्टिफिकेट नहीं देने पड़ेंगे।

—विरोधी पत्र के कार्टूनिस्ट को कोई पत्र स्वीकार कर ले, ऐसी स्पोर्ट्समेनशिप भारतीय पत्रकारिता में नहीं। अब तक जिस पत्र में था, वहाँ यह संतोष था कि मेरी विचारधारा स्वतंत्र है। मेरी अभिव्यक्ति मुखरित है। कहोगी, कांग्रेस के अतिरिक्त भी पार्टियाँ हैं। उनके पत्र हैं। उन्हें मेरी जरूरत हो सकती है। लेकिन लगता है कि उससे कला 'फोर पार्टीज शेक' भले ही हो जाय, 'लाइफ़ शेक' तो नहीं ही रहेगी। यह कह कर कांग्रेस की हिमायत नहीं कर रहा हूँ। कह यह रहा हूँ कि दूसरी पार्टियों की प्रेरणा, पता नहीं किम देश के भूगोल और इतिहास से सम्बन्धित है। इनका महत्वपूर्ण पुर्जा होना भी गौरव की बात नहीं। गलत हो चाहे सही, कांग्रेस भारतीय है, यह जानता हूँ। इतिहास हमेशा बदला है। बदलता रहेगा। लेकिन जिसकी नींव सही है, वह परिवर्तन को झेल लेगा। जिसकी नींव गलत जगह पर आश्रित है, उस खूबसूरत भवन पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। बस इतना ही दूसरी पार्टियों के बारे में जानता हूँ। निदर्श यही, कि उन्हें मेरी जरूरत नहीं। यों कहूँ, उनके काम नहीं आ सकता।

होटल आ गया, तो ऊपर चले गये। सोना के लिए चाय मंगवायी। आराम से बैठ कर, इजाजत मांग कर कि उसकी उपस्थिति में सिगरेट पी सकता हूँ, और स्वीकृति पाकर, सुलगा कर कहा:—सोना, सफलता और असफलता किसी की श्रेष्ठता का मापदंड नहीं हो जाता। आज कांग्रेस असफल है, ऐसा कहने वालों की कमी नहीं। मैं इनकार नहीं कर सकूंगा। लेकिन इस का यह अर्थ लगाना नितान्त मिथ्या है कि वह कभी ईमानदार संस्था रही ही नहीं।

‘जो हो, बात यह है सोना—कि राजनीतिक, पीड़ितों में मेरा भी नाम समझ लो। अब सीधी-सादी जिन्दगी गुजारना चाहता हूँ। इतना तो पैसा पास में है ही कि कुछ दिनों तक काम-धाम की चिन्ता न करूं और जीवन में रस न हो, तो भी जीया तो जा ही सकता है। पर इस वैराग्य का आगामी रूपान्तर कैसा होगा, यह ठीक से नहीं जानता।

एकाएक सिगरेट को पैरों तले कुचल कर, मानों इन सारे पचड़ों से भाग कर त्राण पाना चाहता हूँ, कह बैठा:—‘सोना, शादी करना चाहता हूँ! किसी साधारण लड़की से, जो कला-बला न जानती हो। अशिक्षित हो। रूपहीना हो: और भी चाहे जो हो, मगर ऐसी हो, जो मुझे संभाल सके। जैसे शान्तनु से गंगा ने वचन ले लिया था, वैसे ही मुझसे कोई सवाल न पूछे। क्या करता हूँ, क्यों करता हूँ, इसकी किरायत न मांगे। है कोई? कहो, हो सकती है, ऐसी कोई वधु?’

—ऐसी मृणाल तो नहीं है।

—सो जानता हूँ।

मैंने गौर से सोना की ओर देखकर पूछा—‘सोना, सच बताओ; तुम मेरी व्यथा को समझ सकती हो। तुम्हें भी तो किसी एक की मौत का भयंकर सदमा लगा है। क्या तुम जीवन भर उसी दुख से दुखी रहोगी? यही आत्महनन प्रेम होगा?’

—आजकल मैंने वापस कॉलेज ज्योइन कर लिया है। मेडिकल-लाइन ली है। डाक्टर होना चाहती हूँ। जानती हूँ जो गया, वह लौट कर नहीं आयगा। लेकिन किसी अन्य को बर्दाश्त कर सकूंगी, इसमें सन्देह है। इस सम्बन्ध में अतिरिक्त सोचा भी नहीं जाता।

-ठीक यही बात तो मेरे साथ हुई है सोना । नीला चली गयी तो कितना ही रोऊँ, बिलखूँ, अभाव, और आवश्यकता महसूस करूँ; वह नहीं मिल सकेगी । तुम जिस तरह से अपने मन को भुलावा देना चाहती हो, उसी तरह मैंने सर्विस करने के बाद अपने को देना चाहा था । लेकिन हुआ यह, कि अग्नि-परीक्षा शेष नहीं हुई और अभी भी तप रहा हूँ ।

-राम, कृपा करो । इस विषय को इस तरह से मत छोड़ो, कि मेरा जिक्र आ जाय । अपने बारे में विशेष सोचने में मुझे कष्ट होता है । बहुत अधिक । सहा नहीं जाता । इतना ।

चुप हो गया । सिगरेट फूँकता रहा ।

सोना ने पूछा:—जाऊँ ?

कह दिया:—अच्छा ।

वह चली गयी । नीचे तक पहुँचा आया ।

मन की प्यास आज फिर नंगी हो गयी । किसी को स्थायी रूप से पाने के लिए व्याकुल हो उठा । मृणाल को अस्वीकार करने का कारण खोजता हूँ, तो कभी-कभी लगता है, कि केवल विग्रह की ही बात नहीं है । पराजय की भी बात थी । उससे डरता था, इसीलिए भावविश के उच्चतम उफान के करीब जाकर भी उसके स्पर्श से बचकर चला आया था ।

कार्टूनों की कटिंग्स, फाइल्स और नाना प्रकार के पत्र-व्यवहार को देख कर अरुचि-सी हुई । सारा सामान एक जगह एकत्रित किया । जो कार्टून्स बड़े उत्साह तथा प्रेम के साथ मैंने संजो-संभाल कर रखे थे, नीचे सड़क पर उड़ा दिये । जिन्हें गली के बच्चे उठा ले गये । ब्रश, बोर्ड, पेंसिलें किताबें सब कुछ मुझे व्यर्थ-सी लगने लगीं । सब कुछ इधर-उधर बाँट दी । कलाकार बनने का जो अहंकार था, जैसे उसे तिरोहित कर रहा हूँ । अपनी इस एक मात्र वस्तु की अन्त्येष्टि-क्रिया करते समय कलेजा मुंह को आ रहा था, लेकिन इस अन्तिम बन्धन से मुक्त होने के लिए अपने आप को दांत भींच कर तैयार कर लिया था ।

सोना ने जिस प्रश्न को टाल दिया था, उसे मैंने भी टाल दिया । सोचा, कि माँ-अन्नपूर्णा और नीला के सामने अखण्ड ब्रह्मचर्य की जो प्रतिज्ञा कर गया हूँ, उसे निभाऊँगा । सचमुच मुझ जैसे अस्थिर आदमी को पत्नी पाने का

अधिकार नहीं। इसलिए इसे त्याग नहीं कहूंगा, कहूंगा कि जो सत्य था, जो प्रस्तुत था, उसे स्वीकार करने में जो देर की थी, उसका प्रायश्चित्त हो गया।

मोचा, अभी भी भारत में संन्यासियों के प्रति आस्था है। निर्वन्ध, मुक्त होकर इस दुनियां को देखूंगा। देखूंगा, कि कितने श्रेष्ठ पात्र संसार में आज भी मौजूद हैं। दर्शन की इस प्राप्ति से संतुष्ट हो सकूंगा, ऐसा विश्वास हो आया था। इसके अतिरिक्त कोई चारा भी नहीं दिखायी दे रहा था। सो इस मार्ग को विवशता का एकान्त-मार्ग भी कह सकता हूँ।

नहीं जानता कि अप्रत्यक्ष रूप से आत्मघात करने जा रहा था, या प्रत्यक्ष रूप से मुक्तिवोध हो गया था। योजनाबद्ध मुझमें कुछ हो नहीं सकेगा, बिना योजना के जो हो सकता हो, उसे मुक्त रूप से स्वीकार करने का व्रत लेना ही मेरे लिए सुखदायक होगा; यही निष्कर्ष-या लगा। सूर्य तपता है, उससे अन्धकार भाग जाता है। लेकिन बेचारे सूरज ने तो कभी अन्धकार को देखा नहीं। अनजान में जो कुछ कर सकता है, उसे वह अपनी पूरी सामर्थ्य के साथ करता है। जान कर जो किया जा सकता है, वह करके मैंने देख लिया। जो कुछ कर चुका था यद्यपि वह इतना पर्याप्त नहीं था, कि प्रयत्नों के भावी स्वरूप के बारे में इतना उदासीन हो जाऊँ। लेकिन उस मनस्थिति में सम्भवतः यही स्वाभाविक था। सो इस तरह, मेरे इस संन्यास से जिसे लाभ मिल सके, मिले। न मिल सके, तो मेरी चिन्ताएँ अत्यन्त संक्षिप्त हैं।

गेस्वे वस्त्र तो धारण नहीं कर सका। लेकिन मोह में मुक्त आदर्मी संन्यासी के अतिरिक्त क्या हो सकता है? 'धारण करना' तो संन्यासी की भाषा में ही नहीं। संन्यासी का तो अर्थ ही है:—'न लेना।' इसलिए अपने इस स्वयं-भू-वेष पर प्रसन्न होकर, एक दिन होटल का कमरा छोड़कर बाहर निकल आया। मोचा, अब यहाँ नहीं लौटूंगा।

इस संन्यास में अनन्त शक्ति-शाली परमात्मा के दर्शन का उद्देश्य नहीं बना सका। एक विराट मोह अब भी शेष था। स्वयं-धर्म का मूल भी वही है, इसलिए लोड़ता कैसे? परमात्मा की महिमा भी इस क्रमना के पाँछे हलकी पड़ जाती है। नीला के विभिन्न स्वरूपों के दर्शन करने वाला यात्री परमात्मा में अटक कर घाटे में रहेगा, सो मृत-लोक के इस सुन्दर स्वरूप को देखने के लिए ही मैंने यात्रा शुरू की थी। **कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन !** मैं तो सम्प्रति कर्म का भान और उसका अहंकार भी छोड़ रहा हूँ।

सोलह :

हृदय-पूर्वक सब कुछ भूल गया। व्यतीत में परे भविष्य को देख सकूँ, यह कामना थी।

होटल में बाहर निकला, तो अनजाने में ही मृणाल के घर की ओर चला गया। मन की अतल गहराइयों का न जाने कौनसा निर्देशन था, कि मागे बन्धनों में मुक्त होने वाले इस राम के कदम बिलकुल लाचार होकर पिंगला के घर की ओर चल पड़े ! कि अन्तिम लालसा शेष रह गयी—कि उसे दूसरा सम्बोधन दे, विरक्ति को स्पष्ट कर, योगी हो जाऊँ !

दरवाजे के करीब आते-आते पैर जड़ हो गये, कि आगे नहीं बढ़ सका। डरगला मर गयी। शक्ति शेष हो गयी। दुखी होकर सोचा, कि अरे ! यही माया मोह का बन्धनमोचन है ? लौटने के लिए मुड़ा। लेकिन वास्तव में निराशा का कारण था, उस मकान की सजावट। उस आलीशान इमारत का श्रृंगार, और वहाँ की चहल-पहल।

पता नहीं किस काम से सोना बाहर निकल आया। मुझे देखा, तो कुछ आश्चर्य-मा हुआ। बोली, 'अरे राम ! तुम ? अन्दर क्यों नहीं आये ? तुम्हें निमन्त्रण-पत्र नहीं मिला ? मृणाल का ब्याह हो रहा है !'

अन्तिम बात सुनकर आँखों में पानी भर आया। कहाः—इसलिए तो आया था। कोई उपहार नहीं दे सका तो मुझे बड़ा दुख होगा सोना। और वही भूल आया हूँ। कुछ न कुछ लेकर जहर आऊँगा। चलता हूँ। जन्दी ही आऊँगा। तुम तो रहोगी न ?

कहने लगी, 'जीजी से मिल लोगे तो कोई पाप तो नहीं हो जायगा, राम। अब तो निष्ठुरता और रूठने का यह रिश्ता भी समाप्त हो गया। अन्त के समय तो कोई किसी तरह का विग्रह नहीं करता।

कहाः—विग्रह मैं भी नहीं करूँगा सोना। आऊँगा। जहर आऊँगा। मृणाल को आशीष नहीं दे सका, तो जीवन भर पछतावा रह जायगा। इस कायाकल्प के समय पछतावे को साथ लिये चलना नहीं चाहता। और ब्याह ही तो कन्याओं के लिए सौभाग्य का एकमात्र शुभ दिन होता है।

शायद उसने मेरे आंसुओं को देख लिया। शायद न देखा हो। लेकिन मुझे करुणा का, दया का सामना नहीं करना पड़ा। मुड़ कर लौट पड़ा, तो उसने आग्रह नहीं किया।

वापस होटल आया। जहाँ न आने का संकल्प ले कर चला था, वहीं लौट कर जाने में संकोच हो रहा था। लेकिन अन्तिम बार यदि वहाँ न जा सकता तो बाद में जो दिव्य तत्व-बोध हुआ, वह नहीं होता। शुद्ध रूप से कला का अन्तिम कृतित्व मृणाल को भेंट कर, यही कामना, यही इच्छा थी, जिसके कारण चिन्तन का निदर्श वैराग्य भी मुझे यहाँ तक लौटा लाया था।

क्या बनाऊँ? अन्तिम रचना। अन्तिम कृतित्व? व्यक्तित्व की अन्तिम देन!

वह तो शुद्ध, निर्लिप्त और निष्णात होनी चाहिए।

आज नीला होती, तो अपने मौन दुख को उसकी गोद में उड़ेल देता। वह होती तो शायद मेरा दुख इतना खामोश भी नहीं होता। उस दिन नीला कह रही थी कि भावनाओं का उफान कलाकार की विशेषता नहीं, उस उजार की स्थिरता और उसका प्रत्यावर्तन कला की सबसे बड़ी देन है। उस शक्ति को पाना ही कला की सार्थकता है।

इसलिए आज जब भावनाओं के उफान को स्थिरता प्राप्त हो गयी है, तो उसको अकारथ नहीं जाने दूंगा। अन्तिम कृतित्व अपने आप में फिर सम्पूर्ण क्यों नहीं होगा?

कागज पर मन की घनीभूत रेखाएं खेलने लगीं।

संसार की श्रेष्ठ कला-कृतियों में से वह एक थी।

-अनिद्य सुन्दरी, परम पवित्र, महापात्रा, महायोगी, नीला!

-इस राम की नीला! दिवंगत! शेष स्मृति का संचित स्वरूप!

वह चित्र मेरी चिर-संरक्षित भावनाओं का प्रतीक था। लोग तो कलाकार के एक क्षण के भाव को भी अमूल्य कहते हैं। और मेरा यह युग-युग से संचित भाव, आज कागज पर सचेष्ट प्राण पड़ा था।

संतोष की अन्तिम सांस ली। अब प्रत्यक्ष कृतित्व का ऐसा सुख फिर कभी प्राप्त नहीं होगा।

रात भर उस तस्वीर को देखता रहा। रोता रहा!

-अरे, मन के तुच्छ राग के सम्मुख इस दिव्य कृति को समर्पित कर देना होगा?

—चलो अच्छा है, मोह का यह अन्तिम पर्दा भी नष्ट हो जाय !

—संन्यासी का यह अन्तिम कर्मबन्धन, अन्तिम अर्थ-बन्धन भी समाप्त हो जाय कि कुछ भी शेष न रहे ।

—मृणाल को भी यह अन्तिम उपहार भेंट चढ़ा दूं, कि प्रेम भ्रम-मात्र भी बाकी न रह जाय ।

किसी से कोई अपेक्षा नहीं ।

—यह जीवन, यह कला, यह मोह, यह सौन्दर्य, सब आज के बाद मेरे नहीं रहेंगे !

—परिचय, अपरिचय, प्रेम और अलगाव सब कुछ नीला की इसी गूढ़ भावाभिव्यक्ति में केन्द्राभूत हैं । एक असें के बाद उसे प्रत्यक्ष रूप देकर पा सका हूं । उसे ही स्वेच्छा के साथ भेंट चढ़ा कर अन्तिम ध्रुवांजलि अपने कलाकार के शव पर चढ़ा दूं !

लेकिन याद आया, मृणाल को इस चित्र का भेंट देना, क्या अनजाने में कोई गुनाह नहीं हो जायगा ? कि जीवन के लम्बे-चौड़े इतिहास में छिपे हुए इस दुखान्त अध्याय को उसके सामने हमेशा के लिए रखने का आग्रह करूं ?

इसलिए मृणाल के घर के पास आते-आते भेंट देने का उत्साह समाप्त हो गया । कहूं, कि अन्तिम अहंकार शेष हो गया ।

पेंटिंग लिये-लिये नीला के मकान के सामने आया । सामने अनन्त समुद्र लहरा रहा था । उस घर में अब कुछ भी नहीं है । नीला के बिना वहां जाना प्रवंचना है । छल है । अधिक नहीं करूंगा ।

समुद्र के किनारे लोगों की भीड़ आमोद-प्रमोद में मग्न है !

चित्र के सहित समुद्र में उतर पड़ा ।

बढ़ता गया । पानी घुटनों तक आ गया ।

आगे बढ़ा । सीने तक ।

और आगे—गले तक !

चित्र के दोनों हाथों से सिर के ऊपर धामे हुए था । अब उसे समुद्र में छोड़ दिया । समुद्र की विराट तरंगों में वह संक्षिप्त कृतित्व अन्तर्ध्यान हो गया ।

भीगे कपड़ों बाहर निकल आया । देखा, समुद्र अब भी लहरा रहा है । नीला का चित्र उस नील-वर्णीय समुद्र में विलीन हो गया है ।

उस स्थान पर टकटकी लगाये देखता रहा, जहां वह डूब गया था।
 लगा कि नीला वहां नजर आ रही है। कह रही है, 'राम, इतनी
 जल्दी रोने लगोगे ? हार जाओगे ?'
 भागे हुए कुत्ते की वाह में आसूँ पोंछे।
 फुसफुसाया—क्या कहें नीला ?
 कोई उत्तर नहीं मिला। प्रश्न प्रतिध्वनित होता रहा।

सत्रह :

विराट जनरल में अपने को खा बैठा, तो लगा कि उत्साह शेष है,
 आशा जीवित है।

निराशा डल चुकी है।

कदम आगे बढ़ गये।

कि आज वहां पहुंच गया हूं, जहां सोना नहीं है, मृणाल नहीं है,
 व्यक्तिगत रूप से गैलम कोई नहीं है।

नीला की स्मृति शेष है, उसके रेखा-चित्र को विराट जन-मन के मामले
 उपास्थित करने में असमर्थ था, सो किसी एक को भेंट देकर मैंने अपने साथ
 विश्वासघात नहीं किया। अक्षर-चित्र के इस कृतित्व के प्रति लोगों की आस्था
 होगी, प्यार होगा, यही सोचकर इसे प्रस्तुत कर रहा हूं।

इस रेखा-चित्र के अन्तिम अध्याय में और आरम्भ के प्रथम अक्षर में
 नीला को सम्बोधित कर इतना ही कहना है :-**त्वदीयम् वस्तु गोविन्दम्
 तुभ्यमेव समर्पयेत।**

मन दुखी है, इसलिए अन्तिम बात इतनी ही कहनी है, उस अज्ञात-
 देश-वासिनी एवं अज्ञात-रूपा नीला से—कि तुम्हारा यह राम पलायनवादी
 नहीं हुआ है। निराश नहीं हुआ है। वह तुम्हारी धारणाओं के अनुकूल है,
 इस कृतित्व पर विश्वास करना।

००००००००००

इति शुभ श्री :

